रजत जयन्ती ग्रन्थमाला-23

सुवर्णद्वीपीय रामकथा

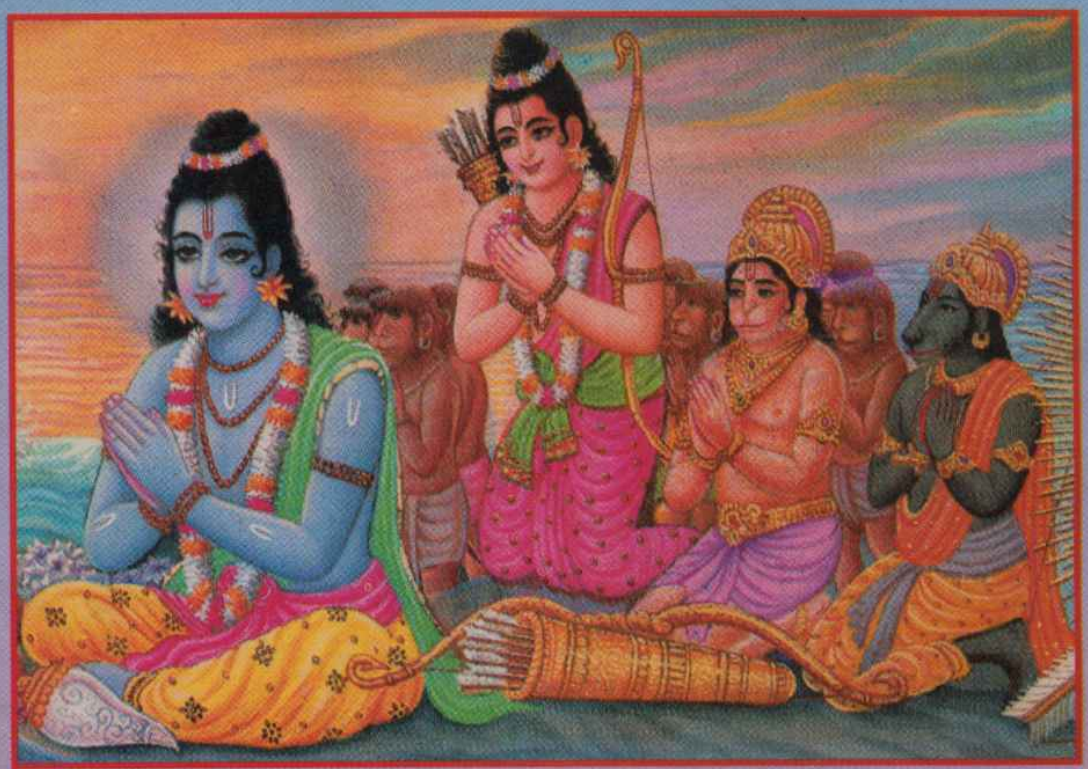

राजेन्द्र मिश्र

राष्ट्रिय-संस्कृत-संस्थानम्

वृहत्तर भारतीय उपनिवेशों में सुवर्णद्वीप (जावा तथा बाली) प्राचीन भारतीय आदर्शों के सर्वाधिक समीप रहा है। जावा में महाराज पूर्णवर्मा (ई० प्रथम शती) के अनन्तर मतराम, काडिरी, सिंहसारि तथा मजपहित-वंशी हिन्दू नरपतियों ने ७३२ ई० से १४७८ ई० तक एकच्छत्र शासन किया। ये नरेश स्वयं को नल, मान्धाता, पृथु, राम एवं युधिष्ठिर के आदर्शों का अनुयायी मानते थे जैसा कि उनके शिलालेखों से ज्ञात होता है।

सुवर्णद्वीपीय नरपतियों ने समय-समय पर प्राम्बनान, मलंग, मन्तरण, कलसन तथा केड्प्रान्त की उपत्यका में भव्य त्रिदेव-मन्दिर बनवाये तथा इनकी भित्तियों पर रामकथा को उत्कीर्ण कराया।

महाकवि योगीश्वर ने मतरामवंशी सम्राट् वतुकुट बलितुंग (नवीं शती का अन्तिम चरण एवं दशम का पूर्वार्ध) के संरक्षण में वाल्मीकि एवं भट्टि के रामकथासूत्रों पर आधारित रामायणककविन् नामक कालाजयी कृति का प्रणयन किया जो समूचे कविभाषा-वाङ्मय (Old Jawanesehit.) का शिरोरत्न है। पन्द्रहवीं शती में जावा का इस्लामीकरण हो जाने के बाद भी रामायणककविन् की लोकप्रियता कम नहीं हुई। फलतः मुस्लिम कवि यशादिपुर प्रथम ने १८वीं शती ई० में 'सिरतकाण्ड' नाम से नये रामायण की रचना की। प्रस्तुत ग्रंथ में सुवर्णद्वीपीय रामकथा का अत्यन्त प्रामाणिक वृत्त लिखा गया है।

रजत जयन्ती ग्रन्थमाला - 22

सुवर्णद्वीपीय रामकथा

(RĀMĀYAṆA EPISODE IN INDONESIA)

राजेन्द्र मिश्र

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
नई दिल्ली
१९९६

प्रकाशक
डॉ० कमलाकान्त मिश्र,
निदेशक
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
४०-ए, राजागार्डन, विशाल एन्क्लेव
नई दिल्ली-११००२७

© राष्ट्रिय-संस्कृत-संस्थान

रजत जयन्ती ग्रन्थमाला-22

प्रथम संस्करण—१९९६

वि० सं० २०५३

मूल्य : रु० ५०/- रुपये

अमर प्रिंटिंग प्रेस
दिल्ली-११०००९
दूरभाष : ७२५२३६२

पुरोवाक्

'योऽनूचानः स नो महान्' इस उद्घोष के अनुरूप संस्कृत की प्राचीन शास्त्रीय परम्परा के संरक्षण, संवर्द्धन तथा प्रचार-प्रसार के लिए सन्नद्ध राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान ने अपना रजत जयन्ती वर्ष पूर्ण किया है, यह समस्त विद्वज्जन एवं संस्कृतानुरागियों के लिए अपार हर्ष का विषय है ।

इस अवसर पर देश के विभिन्न प्रान्तों में विराजमान प्रतिष्ठित संस्कृत विद्वानों के द्वारा प्रणीत विविधशास्त्र विषयक ग्रन्थरत्नों को रजत जयन्ती ग्रन्थमाला के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है ।

प्रस्तुत ग्रन्थ **सुवर्णद्वीपीय रामकथा** हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष एवं आचार्य लब्धप्रतिष्ठ कवि **प्रो॰ राजेन्द्र मिश्र** द्वारा प्रणीत है । इस ग्रन्थ में विद्वान् लेखक ने अपने इण्डोनेशिया प्रवास के दौरान प्रत्यक्ष दृष्ट ज्ञान एवं अनुभव से सुवर्णद्वीप (इण्डोनेशिया) में प्रचलित रामायण कथा और वहां की संस्कृति का संक्षिप्त विवेचन सप्रमाण प्रस्तुत किया है । हमारे साग्रह अनुरोध से रजत जयन्ती ग्रन्थमाला के लिए इस ग्रन्थ का प्रणयन कर प्रो॰ मिश्र ने सुरभारती की श्रीवृद्धि की है तथा संस्थान का गौरव बढ़ाया है, इसके लिए हम उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करते हैं ।

रजत जयन्ती ग्रन्थमाला के प्रकाशन आदि कार्यों में सक्रिय भूमिका निभाने वाले डा० सविता पाठक , डा० रा० देवनाथन, डा० एम० चन्द्रशेखरन् एवं अन्य सहयोगीगण साधुवाद के पात्र हैं ।

अमर मुद्रणालय के अधिकारियों ने निष्ठा के साथ इस ग्रन्थ का मुद्रण कर विमोचनार्थ प्रस्तुत किया है, इसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं ।

कमलाकान्त मिश्र

निदेशक

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान

दिनाङ्क २१-८-१९९६

नई दिल्ली

प्राग्वाचिक

सुवर्णद्वीपीय रामकथा (Rāmāyaṇa in Indonesia) शीर्षक यह लघु ग्रन्थ मैंने सम्मान्य बन्धुरत्न डा. कमलाकान्त मिश्र जी निदेशक, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली के स्नेहामंत्रणवश बड़ी शीघ्रता में लिखा है। बृहत्तर भारत के सर्वोत्कृष्ट साहित्य, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं राजनयिक प्रतिनिधि 'सुवर्णद्वीप' में कभी प्रतिष्ठापित तथा आज भी जीवन्त प्रतीक होने वाली रामायण-संस्कृति का प्रत्यक्ष, प्रामाणिक परिचय देने वाला यह **राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान** के **रजत जयन्ती-प्रकाशन** का एक 'साहित्यिक उपायन' बन रहा है, यह मेरे लिये हार्दिक परितोष एवं गौरव का विषय है।

निर्णायक रूप से सुवर्णद्वीप वर्तमान जावा का प्राचीन प्रत्यभिज्ञान भी है। यूनानी तथा अरबी इतिहासकारों का सुवर्णद्वीप (क्रिसे अथवा जाबुज) उनके लिये 'परिकल्पना' से अधिक कुछ नहीं था। परन्तु भारतीयों के लिये सुवर्णद्वीप उनका चिर-परिचित, प्रत्यक्षदृष्ट भूखण्डविशेष था, जहां उन्होंने उपनिवेश स्थापित किया था।

परन्तु आदिकवि वाल्मीकि जिस 'यवद्वीप' को 'सुवर्णरूप्यकद्वीप' विशेषण से अलंकृत करते हैं वह 'सप्तराज्योपशोभित' था। इन सात संघटक राज्यों की समस्या अभी भी नहीं सुलझी है कि ये राज्य वर्तमान यवद्वीपीय भूमि के ही सात राज्य थे अथवा जावा के साथ समन्वित छः और द्वीप ?

बहरहाल, मैं सुवर्णद्वीप को एक सामूहिक संज्ञा समझता हूं और उस दृष्टि से जावा से सटे सुमात्रा एवं बालीद्वीप को भी सुवर्णद्वीप ही मानता हूं। आज का इण्डोनेशिया राज्य प्रशान्त महासागरीय १३६७७ द्वीपों का एक विशाल समवाय है, जिनमें प्रायः तीन हजार द्वीप आबाद हैं।

इस ग्रन्थ में अधिकांश मेरा अपना चिन्तन, मनन, तथा बालीद्वीपीय प्रवास का प्रत्यक्ष अनुभव है । फलतः इतिहासकारों की मिथ्या तर्कक्रीडाओं के प्रमाणों की परीक्षा में श्रमापव्यय न कर मैंने अपने अध्ययन, पर्यटन एवं विश्वस्त अनुभवों का निष्कर्ष लिखा है । आशा है एतदर्थ विद्वज्जनों का आशीः प्राप्त होगा ।

शिमला

८ अगस्त १९९६ई० **अभिराज राजेन्द्र मिश्र**

यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति॥

जब तक भूतल पर स्थित रहेंगे पर्वत एवं नदियां, तब तक रामायण की कथा लोकों में प्रचारित होती रहेगी। —रामा. बालकाण्ड. ३.३६

साक्षात् मन्मथशील सङ् रघुसुतामिनुहि
विषयधर्म दिङ् सिरात्।
ङ्कान्त रामायण भद्रवाद निर मोघ मवङि
रुमिसिप् तिके हति॥

सम्पूर्ण जगत् के प्रति अपना धार्मिक कर्तव्य पूर्ण करने में राघवेन्द्र श्रीराम का स्वभाव साक्षात् मन्मथ के समान है जो विषयधर्म (इन्द्रियसुख) की पूर्ति में अपना कर्तव्य पूर्ण करता है। इसीलिये, ईश्वर को 'भद्रवाद' (उत्तम शब्दों) से संवलित यह रामायण उस 'सुरभि' के समान बने जो धंस कर लोगों हृदय तक पहुंच जाती है।

—रामायणककविन् २६.५०

विषयानुक्रम

विषय	पृष्ठसंख्या
प्राग्वाचिक	१
बृहत्तर भारत : एक परिचय	३-१४
यवद्वीपीय हिन्दूसाम्राज्य : स्थापना एवं विस्तार	१५-२०
प्राचीनजावी साहित्य : उद्भव एवं विकास	२१-२६
सुवर्णद्वीपीय रामकथा का मूलस्रोत : रामायणककविन्	२७-६०
सुवर्णद्वीपीय रामकथा के प्रमुख वैशिष्ट्य :	६१-८७
(क) अभिनव चरितसर्जना	
(ख) भावयित्री प्रतिभा का परिपाक	
(ग) शास्त्रप्रतिभा की विपुलता	
(घ) लोकाभिव्यक्ति	
(ङ) राम एवं सीता का देवत्व	
सुवर्णद्वीपीय रामकथा-परम्परा के विविध रूप :	८८-९७
(क) स्थापत्य एवं रामकथा	
(ख) रंगमञ्च (वायांग) एवं रामकथा	
(ग) हस्तशिल्प एवं रामकथा	
सुवर्णद्वीपीय रामायण संस्कृति : एक मूल्यांकन	९८-१०१
आधार ग्रन्थ	१०२

बृहत्तर भारत : एक परिचय

यथेष्ट प्रमाणों के अभाव में सुदूरवर्ती पूर्व एशियाई राष्ट्रों तथा प्रशान्तमहासागरीय क्षेत्रों का प्राचीन श्रमिक, इतिहास अभी भी अज्ञात प्रायः है। परन्तु यह श्रेय उन उपलब्ध भारतीय, यूनानी, चीनी एवं अरबी श्रोतों को जाता है जिनसे कि वृहत्तर भारत के अंगभूत इन राष्ट्रों एवं द्वीपों की प्राचीनता का पता लगाने में सहायता मिलती है।

दक्षिण पूर्व एशियाई भूखण्डों तथा प्रशान्तमहासागरीय द्वीपों में भारतीय शासनसत्ता एवं संस्कृति की स्थापना तथा प्रचार-प्रसार का कार्य प्रथम शताब्दी ईसवीं में ही प्रारम्भ हो गया था। **चम्पा** (वियतनाम) **कम्बुज** (कम्बोडिया) **सुखोदय-द्वारावती-अयोध्या** (थाइलैण्ड) **कराह द्वीप** (मलेशिया) **सुवर्णभूमि** (बर्मा, आधुनिक म्यान्मार) **श्रीविजय** (सुमात्रा) तथा **सुवर्णद्वीप** (जावा एवं बाली) में सर्वतन्त्र-स्वतंत्र भारतीय उपनिवेश प्रथम से चौथी शताब्दी ई. के मध्य स्थापित हुए- ऐसा उन द्वीपों तथा भूखण्डों में उपलब्ध शिलालेखीय प्रमाणों से सिद्ध होता है। **जावा** (यवद्वीप) एवं बाली के अतिरिक्त बोर्नियों (प्राचीन तुङ्गभद्रपुर तथा आधुनिक कालीमन्तान) में भी मूलवर्मा का शक्तिशाली साम्राज्य चौथी शताब्दी ई. में ही ऐश्वर्य की परकाष्ठा पर था। सुवर्णभूमि के भारतीय साम्राज्यों में धन्यावती, रामावती, हंसावती तथा मारवती अत्यन्त प्रख्यात रहे।

चम्पा में भारतीय उपनिवेश की स्थापना संभवतः द्वितीय शती ई. में हुई। इस शक्तिशाली साम्राज्य का संस्थापक था श्रीमार। *हत्रंग* क्षेत्र के *वोकान्ह* अभिलेख में *श्रीमार* का नाम्ना उल्लेख है। इस लेख में श्रीमारवंशी किसी राजा द्वारा दान दिये जाने का उल्लेख है-

श्रीमारराजुकुलवंशविभूषणेन
श्रीमारलोकनृपतेः कुलनन्दनेन।
आज्ञापितं स्वजनसज्जनसंघमध्ये
वाक्यं प्रजाहितकरं करिणा वरेण॥

श्रीमार के साम्राज्य का नाम था अमरावती जिसकी राजधानी थी इन्द्रपुर अथवा इन्द्रपुरी। इस भव्य नगर के अवशेष सम्प्रति *डियोजियोग* क्षेत्र में मिलते हैं। यहां से मात्र १९ किलोमीटर दूर *माइसोन* के मन्दिरों तथा पो नगर के देवालयों से प्राप्त अनेक शिलालेखों से भी चम्पा के परवर्ती-**गंगराज, पांडुरंग** एवं **भृगुवंशी** नरपतियों का प्रामाणिक वृत्त मिलता है। चीनी शासनसत्ता के साथ निरन्तर संघर्षरत होने के कारण चम्पा का विशाल साम्राज्य उत्तर से दक्षिण की ओर पहले विजयपूर्ण (बिन्हडिन्ह) तथा बाद में, पाण्डुरंग (फन रंग) केन्द्रित हो उठा।

कौण्डिन्य प्रथम ने कम्बुज में भारतीय शासनसत्ता की नींव ई. प्रथमशती में ही डाली। उसने कम्बुज राजकुमारी **सोमा** से विवाह किया तथा वहाँ का शासक बना। इसी प्रकार, *सुमात्रा* का **श्रीविजय** एवं *कराह द्वीप* (वर्तमान केड्डाह, मलेशिया) का **शैलेन्द्र** सामान्य भी ईसा की प्रारम्भिक शतियों में भी स्थापित हो चुका था।

वृहत्तर भारत के इन उपनिवेशों की जानकारी हमें मुख्यतः चार स्रोतों से प्राप्त होती है- भारतीय,यूनानी, चीनी एवं अरबी स्रोत। भारतीय स्रोत की चर्चा हम बाद में करेंगे।

टालेमी (ई. पू. द्वितीयशती) ने अपने *विश्व इतिहास* में भारत तथा वृहत्तर भारत के विषय प्रभूत जानकारी दी है। वह भृगुः कच्छ (भड़ौच) के निकटवर्ती बन्दरगाहों तथा व्यावसायिक नगरों की नामावली प्रस्तुत करता है जिनमें प्रमुख हैं — **सुप्पार** (सूर्पाटक, सोपाटा) **कल्लिमेन** (कल्याण) **मन्दगोरा, नौरा** (कनानोर) **नेलकिण्डा** तथा **बकरे** आदि। वह एक ऐसे समुद्री मार्ग का भी उल्लेख करता है। जिससे होकर जलपौत्र सुवर्णद्वीपीय भूखण्डों तक पहुंचा करते थे। यह मार्ग बंगाल की खाड़ी में सागर तट से होता हुआ पलोरा तक जाता था। यह स्थान

आधुनिक गंजाम जिले (उड़ीसा) के गोपालपुर के पास स्थित था । यहां से जलपोत सीधे मलाया प्रायद्वीप जाते थे ।

टालेमी अपने विवरणों में किसी **सुवर्णद्वीप** (क्रिसे अथवा क्रिसे कोटा अथवा क्रिसे केरसोनिसस) का उल्लेख करता है जो प्रशान्त महासागरीय क्षेत्र में कहीं अवस्थित था ।

सम्राट् **क्लाडियस** (४१-५४ A.D) के समकालीन इतिहासकार **पाम्पिनस दि मेला** ने भी अपने ग्रन्थ द *कोटोग्राफिया* में क्रिसेद्वीप का विवरण दिया है । उसके अनुसार इस सुवर्णभूमि की मिट्टी सोने की थी । परवर्ती इतिहासकार **प्लिनी** तथा *पोरिप्लस आफ दि इरीथ्रियन सी* के लेखक ने भी **क्रिसे** (Chrise, सुवर्णद्वीप) का उल्लेख किया है । इसी प्रकार **डायोनिसस, पेरीगेटस्, सोलिनस, मार्टियोनस** तथा **निसेकोटस** आदि यूनानी एवं रोमन लेखकों ने भी सुवर्णद्वीप के विषय में अपनी जानकारी प्रकट की है ।

परन्तु सुवर्णद्वीप-विषयक उपर्युक्त विद्वानों की जानकारी संशयपूर्ण ही थी । ऐसा प्रतीत होता है कि उनका विवरण सुने सुनाये वृत्तों पर आधारित था । इसीलिये प्लिनी ने व्याख्या करते हुए कहा कि सुवर्णद्वीप संज्ञा का तात्पर्य मात्र इतना है कि यहां सोने की खानें प्रचुर मात्रा में थी (न कि सारी भूमि ही सुवर्णनिर्मित थी ।) पेरीगेटस् ने भी कहा कि इस द्वीप की मिट्टी ही सुनहरे रंग की थी जो कि सूर्य की प्रखर किरणों के सम्पर्क में आते ही सुवर्ण जैसी आभा बिखेर देती थी ।

इन विवरणों से स्पष्ट: ज्ञात होता है कि यूनानी तथा रोमन एतिह्यविदों को यथाकथञ्चित, बृहत्तरभारतीय उपनिवेशों का ज्ञान था । फिर भी **क्रिसे** (सुवर्णद्वीप) से जुड़े उनके विवरण मूलत: **श्रीविजय** (सुमात्रा) साम्राज्य में ही सीमित प्रतीत होते हैं, जैसा कि अरबी इतिहासकारों के प्रमाणों से भी सिद्ध होता है । इसकी चर्चा आगे की जा रही है ।

यवद्वीप का प्राचीनतम शासक पूर्णवर्मा माना जाता है । जिसका पल्लवलिपि में लिखा गया एक शिलालेख पश्चिमी जावा के बांडुग नामक नगर में सुरक्षित

है । परन्तु दुर्भाग्यवश इस शिलालेख की तिथि को लेकर विद्वानों में मतैक्य नहीं है । कुछ तो इसे प्रथमशती ई. का मानते हैं और कुछ लोग चौथी शती ई. का । यदि प्रथम पक्ष को सत्य माना जाये तो यवद्वीप में भी भारतीय उपनिवेश की स्थापना अत्यन्त प्राचीन सिद्ध होगी ।

बृहत्तर भारत संबंधी चीनी साक्ष्य अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक सिद्ध होते हैं । प्रशान्तमहासागरीय द्वीपों तथा दक्षिणपूर्व एशियाई राष्ट्रों का निकटतम प्रतिवेशी होने के कारण चीनियों का इनसे सीधा सम्पर्क था । निरन्तर परस्पर संघर्षरत इन साम्राज्यों की राजनयिक गतिविधियों से निश्चित ही प्रभुसत्ता भी प्रभावित होती थी और कभी-कभी तो चीन को इन शासनतंत्रों की निजी मामलों में हस्तक्षेप भी करना पड़ता था । अधिकांश भारतीय उपनिवेश चीनी सम्राट को यथावसर उपहारादि भेजते रहते थे जो उनकी वशंवदता का प्रतीक होता था । चीनी मिंग वंश के इतिहास में ये सारे विवरण आज भी सुरक्षित हैं । भारत से लौटता हुआ प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग भी इन द्वीपों मे प्रभूत काल तक रुका था । फलतः उसके यात्रावृत्त में भी इन द्वीपों की तत्कालीन (सातवीं शती ई.) परिस्थितियों का विश्वसनीय दस्तावेज सुरक्षित है ।

चीन के **लि-यंग** वंश के इतिहास में **लंग-या-सू** नामक राज्य का उल्लेख किया गया है । जो मलय प्रायद्वीप में स्थित था । यह राज्य **लि-यंग-वंश** (६०० ई.) से चार सौ वर्ष पूर्व स्थापित हुआ था । इसका तात्पर्य यह है कि यह राज्य द्वितीय शती ई. में अस्तित्व में था ।

इसी प्रकार एक अन्य चीनी साक्ष्य से ज्ञात होता है कि **कांगताई** नामक एक चीनी राजदूत तीसरी शताब्दी ई. में फूनान गया था । इसी विवरण से यह भी ज्ञात होता है कि फूनान के शासक कौण्डिन्य के एक उत्तराधिकारी की मृत्यु ९० वर्ष की अवस्था में हुई थी तथा इसी कौण्डिन्य के तीसरे उत्तराधिकारी फन-यन ने २४३ ई. में कुछ देशी उपहार-सामग्रियों तथा गायकों के साथ अपना एक दूतमंडल चीन के शासक के पास भेजा था ।

एक अन्य चीनी वृत्तान्त से यह भी ज्ञात होता है कि *ये-टियो* के शासक **टियो-पिन** ने १३२ ई. में एक दूतमण्डल चीन भेजा था। **पिलियो**, *ये-टियो* का प्रत्यभिज्ञान यवद्वीप (जावा) के रूप में करते हैं।

पुरातात्त्विक साक्ष्यों से भी दक्षिणपूर्व एशियाई भूखण्डों के न केवल भारत अपितु रोमन संस्कृति से भी परिचित होने का ठोस प्रमाण मिलता है। चम्पाक्षेत्र के ही ओस-इओ नामक स्थान से जो पुरातात्त्विक सामग्रियां मिली हैं उनमें अनेक भारतीय प्रतीकों (ऊं, स्वास्तिक, कमल आदि) के साथ ही साथ भारतीय वर्णमाला भी उपलब्ध हुई है जिसका समय दूसरी शती ई. मान्य है। रोमन शासक **मार्कस ओरिलियस** का एक स्वर्णपदक भी आश्चर्य ढंग से मिला है जिससे कालक्रम (दूसरी शती ई.) और सुनिश्चित हो जाता है। *स्याम* (थाईलैण्ड) के **पांगदुक** नामक स्थान से इसी समय का एक रोमन दीपक भी प्राप्त हुआ है। **डा. आर. सी. मजूमदार** के मतानुसार ये रोमन कलाकृतियां १२० ई. में, रोम से वर्मा के रास्ते चीन जाने वाले संगीतविद् कलाकारों के एक दल के माध्यम से पहुंची। इसी प्रकार रोमन सम्राट **मार्क्स ओटिलियस** द्वारा सन् १६६ ई. में चीनी, सम्राट को प्रेषित दूतमंडल से भी ये रोमन उपहार उस क्षेत्र में गये।

इस प्रकार सिद्ध है कि ईसा की प्रथम-द्वितीय शती में वृहत्तर भारत के समस्त भूखण्ड, शेष संसार से परिचय परिधि में आ चुके थे और उनमें प्रायः सर्वत्र भारतीय उपनिवेशों की स्थापना हो चुकी थी।

अरब यात्री **अल-वरूनी महाराज भोज के** शासनकाल (११वीं शती ई.) में भारत आया था। उसके यात्राविवरणों में भी भारत के साथ ही साथ *जाबुज* अर्थात् सुवर्णद्वीप का उल्लेख है। **याकूत, हरकी, सीराजी** तथा **सहरयार** के विवरणों में भी *जाबुज* की चर्चा मिलती है। परन्तु अरबी इतिहासकारों के ये विवरण भारतीय स्रोतों पर ही आधारित है। उनमें कोई मौलिकता नहीं है।

अब हम वृहत्तर भारतीय उपनिवेशों से सम्बद्ध भारतीय स्रोतों की समीक्षा करेंगे। ये साक्ष्य *रामायण, महाभारत, पुराणवाङ्मय* के अतिरिक्त संस्कृत, पालि,

एवं प्राकृत के सैकड़ों ग्रन्थों में सुरक्षित है। ये साक्ष्य इतनी पुष्कल मात्रा में है कि उनके संकलनमात्र से एक स्वतंत्र ग्रन्थ बन सकता है। अतएव यहां उन स्रोतों का दिङ्मात्र निर्देश किया जा रहा है।

बौद्धवाङ्मय से सम्बद्ध अनेक *जातकों*[१] *लंकावतारसूत्र, महावंश, दीपवंश, मिलिन्दप्रश्न, मनोरथपुरणी* (अंगुत्तरनिकाय-टीका) *वेत्तवत्थुटीका, महाकर्मविभेद* तथा *सुत्तनिपात्-टीका* में सुवर्णभूमि विषयक परिचयसामग्री तथा स्थाविरों द्वारा उन द्वीपों की प्रत्यवाय बहुल यात्राओं के रोचक वर्णन मिलते हैं।[२]

सुत्तनिपात-टीका 'निद्देश' में सुवर्णद्वीप आदि चौबीस देशों की साहसिक सामुद्रिक यात्राओं का विस्तृत वर्णन मिलता है। इनमें कुछ स्थान (सूर्पारक, भरुकच्छ, सौराष्ट्र, मरुकान्तार आदि) तो भारत में ही हैं। परन्तु शेष स्थानों का सम्बन्ध दक्षिणपूर्व एशिया तथा प्रशान्तमहासागरीय द्वीपों से है। प्रसिद्ध पाश्चात्य संस्कृतज्ञ सिलवां लेवी के मन्तव्यानुसार ये स्थान सुवर्णभूमि अथवा सुवर्णद्वीप में थे। इन स्थानों के नाम हैं – **गुम्ब, तक्कोल, तक्कशिला, कालमुख, मरणपार, वेसुंग, वेरापथ, जव, तमलि, वंग एलवद्धन, सुवण्णकूट, तम्बपाण्णि सुप्पार, योन, परमयोन, अल्लसन्द, जवण्णुपथ, अजापथ, मेण्ढपथ, शंकुपथ, छत्तपथ, वंशपथ, सकुणपथ, मूषिकपथ, दरिपथ तथा वेत्ताधार।**

कौटिल्यप्रणीत *अर्थशास्त्र* में कौट, मालेयक तथा पारसामुद्रक मणियों का उल्लेख है। ये मणियाँ मलयसागय के समीपवर्ती कोटि नामक स्थान से, मलयदेश के कर्णीवन नामक पर्वत से तथा समुद्र पार द्वीपों से उत्पन्न होती थी। **कौटिल्य** *सुवर्णकुड्यक द्वीप* की भी चर्चा करते हैं जो स्पष्टतः सुवर्णद्वीप का परिचायक है।

गुणाढ्यप्रणीत *बृहत्कथा* संस्कृत कथा साहित्य का मूल उद्गम है *बृहत्कथा* तो कालकवलित हो गई परन्तु परवर्ती युग में **सोमदेव** (कथासरित्सागर) **क्षेमेन्द्र**

---

१. सुस्सोन्दी जातक, महाजनक जातक, शंखजातक, सुप्पाटक जातक।

२. सविस्तर द्रष्टव्यः दक्षिणपूर्व एशिया में भारतीय संस्कृति। डा. आर. एन. पाण्डेय। इलाहाबाद १९८७ ई.

(बृहत्कथामञ्जरी) **बुधस्वामी** (बृहत्कथाश्लोकसंग्रह) ने लोकप्रचलित उन कथाओं को नये सिरे से संकलित किया। अपभ्रंश भाषा में वृत कथा का एक संस्करण *वसुदेवहिण्डि* नाम से तैयार किया गया। *बृहत्कथा* के इन परवर्ती संस्करणों में भी सैकंडों सार्थवाहों की सामुद्रिकयात्राओं के वृत्त उपलब्ध होते हैं। *कथासरित्सागर* में हर्षपुरनिवासी **समुद्रशूर** नामक वणिक है वणिक की सुवर्णद्वीप-यात्रा का वर्णन मिलता है। इसी प्रकार **ग्रहसेन** की कटाहद्वीप-यात्रा तथा **चन्द्रस्वामी** की नाटिकेन, कटाह, कर्पूर तथा सिहंलद्वीप की यात्रा का भी वृत्त इन कथा ग्रन्थों में उपलब्ध होता है।

वर्तमान मलेशिया का एक प्रान्त अभी भी 'केड्डाह' नाम से विख्यात है। निश्चय ही प्राणों में वर्णित कटाहाद्वीप वर्तमान मलेशिया ही है। इसी प्रकार नाटिकेल तथा कर्पूर द्वीप का समीकरण निकोबार एवं सुमात्रा से किया गया है।

मञ्जुश्रीमूलकल्प में कर्मरंग, नाडिकेर, वाससक, बलि तथा नग्नद्वीपों के साथ यवद्वीप की चर्चा आई है। कर्मरंग को **ह्वेनसांग** *कामलंका* कहता है। बलि तथा नग्नद्वीप को आधुनिक बाली तथा न्यूगिनी (?) माना जा सकता है।

ब्रह्माण्डपुराण में अंग, यव, मलय, शंख, कुश तथा वराहद्वीप की चर्चा आई है। यवद्वीप को विविध रत्नों की खानों से युक्त बताया गया है। यहां द्युतिमान् नामक पर्वत था जो नदियों तथा काञ्चन का उद्गम क्षेत्र था।

यवद्वीपमिति प्रोक्तं नानारत्नाकरान्वितम्।
तथापि द्युतिमान्नाम पर्वतो धातुमण्डितः।
समुद्रगानां प्रभवः प्रभवः काञ्चनस्य तु॥

वायु, मत्स्य, विष्णु तथा *वामनपुराण* में भी सामुद्रिक द्वीपों का परिचय दिया गया है। इनमें नये नाम हैं — इन्द्रद्वीप, कसेरुद्वीप, ताम्रपर्णी, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व एवं वारुणद्वीप। *महाभारत* में सौम्य को ही सौम्याक्ष्यद्वीप कहा गया है।

वस्तुतः *भुवनकोश* पुराणों के प्रतिपाद्य का एक अविच्छेद्य अंग रहा है । फलतः समस्त पुराणों में पृथ्वी के सम्पूर्ण विस्तार का वर्णन, थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ उपलब्ध होता है । *भुवनकोश* में सृष्टि प्रक्रिया, द्वीप -नदी-नद-सागर-पर्वत तथा दिग्दिगन्तस्थित जनपदों का वर्णन है । इसी सन्दर्भ में सामुद्रिक द्वीपों का वर्णन किया गया है । जिनमें कुछेक की तो पहचान हो चुकी है । परन्तु अधिकांश द्वीपों का प्रत्यभिज्ञान किया जाना अभी भी शेष है ।

वाल्मीकि-*रामायण* की चर्चा के बिना बृहत्तर भारत का मूल्याकंन असंभव है, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है । भगवती सीता के अन्वेषण-प्रसंग में वानर राज सुग्रीव विनत नामक, कपियूथप को पूर्व दिशा में जाने का आदेश देते हैं और इसी सन्दर्भ में नवद्वीप (जावा) से लेकर सुदर्शनद्वीप (वर्तमान ईटियङ्गय, न्यूगिनी) तक का द्वीपीय भूगोल वर्णित करते हैं, उन द्वीपों के पर्वतों, सरोवरों, नदियों तथा अन्यान्य वैशिष्ट्यों के साथ । संक्षेप में, यह वर्णन वर्तमान **इण्डेनेशिया** के १३६७७ द्वीपों का प्रामाणिक एवं सटीक परिचय उपस्थित करता है । प्रशान्तमहासागरीय द्वीपों का यह हस्तामलकवत् वर्णन सुनकर भगवान् राम भी विस्मित हो उठे थे और उन्होंने सुग्रीव से पूछ भी लिया था कि 'इन द्वीपोंका ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञान आखिर मिला कैसे ?' सुग्रीव ने विनम्रता पूर्वक उत्तर दिया ।

ततोऽहं वालिना तेन सोऽनुबद्धः प्रधावितः ।
नदींश्च विविधाः पश्यन् वनानि नगराणि च ॥
आदर्शतलसंकाशा ततो वै पृथ्वी मया ।
अलातचक्रप्रतिमा दृष्टा गौष्पदवत्कृता ॥ रामा. कि. काण्ड.

सुग्रीव, सर्वप्रथम विनत को यवद्वीप जाने का आदेश देते हैं जो सात राज्यों से उपशोभित, सोने की खानों से माण्डित सुवर्ण तथा रूप्यक द्वीप वाला था । वह आगे निर्देश देते हैं कि यवद्वीप को पार करते ही शिशिर नामक पर्वत मिलेगा । देवों तथा दानवों से सेवित यह पर्वत शिखर द्वारा द्युलोक का संस्पर्श करता है । समुद्र को पार करने के बाद सिद्ध चारण सेवित रक्तजल वाला वेगगामी शोणनामक एक नद मिलेगा । इसी क्रम में वह निषधपर्वत, सुदर्शन से आवृत तथा (मनुष्यों के

लिये) अगम्य है । वह क्षेत्र सूर्य एवं चन्द्र से रहित, अन्धकार से आच्छन्न तथा पूर्णतः अदृश्य है—

यत्नवन्तों यवद्वीपं सप्तराज्योपशोभितम् ।
सुवर्णरूप्यकद्वीपं सुवर्णाकरमाण्डितम् ।
यवद्वीपमतिक्रम्य शिशिरो नाम पर्वतः ।
दिवं स्पृशति शृङ्गेण देवदानवसेवितः ॥
ततो रक्तजलं प्राप्य शोणाख्यं शीघ्रवाहिनम् ।
गत्वा पारं समुद्रस्य सिद्धचारणसेवितम् ।
ततः परमगम्या स्याद् दिक्पूर्वा त्रिदशावृता ।
रहिता सूर्यचन्द्राभ्यामदृश्या तमसाऽवृता ॥

रामा. कि. का. प. ४०

त्रिकालदर्शी **महर्षि वाल्मीकि** का यह सागरद्वीपीय वर्णन निश्चय ही संशयालु पाश्चात्य विद्वानों के लिये 'अपाच्य' होगा । परन्तु आस्थालु भारतीयों के लिये इसमें अविश्वास एवं अनास्था का प्रश्न ही नहीं उठता । क्योंकि *रामकथा* की प्रस्तुति में अपनी 'अशक्ति' प्रकट करने पर भगवान् परमेष्ठी ने स्वयं प्राचेतस **वाल्मीकि** को यह कहकर आश्वस्त किया था कि 'अनदेखे रहस्य एवं सत्य स्वमेव तुम्हें उद्भासित हो जायेंगे । ये ऋषे ! इस काव्य में तुम वही वर्णित करोगे जो सत्य होगा ।'

और सचमुच, गंगा एवं तमसा के संगम (वर्तमान मेजा क्षेत्र, इलाहाबाद जनपद) पर अपने पर्णकुटीर में बैठे आदिकवि वाल्मीकि ने प्रशान्तमहासागर का सारा क्षेत्र अपने अतीन्द्रिय ज्ञान (Transcendental knowledge) से प्रत्यक्ष देख लिया । वाल्मीकिकृत, जावा, बाली, लोम्बोक, बोर्नियो तथा ईरियङ्गण आदि द्वीपों का यह भौगोलिक वृत्त कितना क्रमिक, सटीक एवं विश्वनीय है — इसका अनुभव अपने बाली द्वीपीय प्रवास (मई १९८७ से अप्रैल ८९ ई) में किया ।

जावा को लांघते ही 'शिशिर' नामक जिस पर्वत की चर्चा रामायणकार ने की है। वह बालीद्वीप का 'गुनुंग अगुंग' है। १०५६० फुट ऊंचे इस पर्वत के बाली धर्मग्रन्थों में महामेरू अथवा कैलाश भी कहा गया है। सचमुच यह पर्वत अत्यन्त 'शिशिर' (शीतल) है। १९६३ ई. के भयावह ज्वालामुखी फूटने से यद्यपि इस पर्वत का शिखर बुरी तरह खण्डित हो चुका है तथापि इसकी गरिमा अक्षत है। इसी पर्वत की पश्चिमी ढलान पर प्रायः सात मील की परिधि में २५ मन्दिर मेरुशैली में बने हैं जिनमें मार्कण्डेय मन्दिर सर्वाधिक प्राचीन है। परन्तु प्रतिष्ठा की दृष्टि से मुख्यतम है —पुरा वैसाकीह अर्थात् -वासुकि मन्दिर। इसी को 'मदरटैम्पल'भी कहते हैं। इस मन्दिर प्रांगण में ब्रह्मा विष्णु तथा महेश (त्रिदेव) के भव्य पलिंगह (दैवीपीठ) स्थापित हैं। यह मन्दिर बालिद्वीप के तीस लाख हिन्दुओं का प्रधानतम तीर्थ है। एकादशवर्षीय महापूजा (पूजा पञ्चबलिकर्म) के अवसर पर मैंने दो बार (२२ एवं २७ मार्च ८९ ई.) इस पवित्र तीर्थ की यात्रा की।

बालीद्वीप में राजधानी डेनपसार से प्रायः ३५ कि. मी. पूर्वोत्तर दिशा में बैदौलु नामक कस्बा है जहां कभी मय दानव का राज्य था। *उसना बाली* नामक स्थानीय पौराणिक ग्रन्थ में मय इन्द्र के संघर्ष की गाथा वर्णित है। मय अत्यन्त रणदुर्मद, अत्याचारी तथा मायावी था। वह अपना शीश काटकर पुनः जोड़लेने की सामर्थ्य रखता था। इसलिये उसको भेदमौलीन, भेदशीर्ष अथवा भिन्नमौलि कहा जाता था। भेद (= बेद) तथा मौलि (= हुलु) शब्दों के अपभ्रंश के ही कारण स्थानीय भाषा में मय की उपाधि *बैदहुलु अथवा वैदौलु* के रूप में प्रसद्धि हुई जो अभी भी एक उपनगर के रूप में अस्तित्व में हैं।

मय दानव के अत्याचारों से पीड़ित प्रजा भगवान शिव की शरण में गई और अन्ततः शिव की आज्ञा से देवसेनापति इन्द्र ने बाटुर पर्वत (बालाद्वीप धुर पश्चिम में स्थित) पर मय का वध कर डाला। वध के अनन्तर मयदानव के शरीर से इतना रक्त निकला कि एक वेगगामी नद फूट पड़ा जिसे अब 'पेतान्' कहते हैं।

मयदानव द्वारा विषाक्तजल से मारे गये देवताओं के पुनर्जीवित करने के लिये देवराज इन्द्र ने वज्र से धरती को फोड़कर एक अमृतमय जलधारा को प्रकट

किया। ये विलक्षण जल स्रोत आज भी मनुकाया नामक गांव के पास स्थित **इन्द्रतीर्थ** (तीर्त एम्पुल)के एक सरोवर में विद्यमान है। यही जल धारा सरोवर से अनेक पवित्र कुण्डों में होती हुई, इन्द्र तीर्थ की परिधि से बाहर **पकेरिसान** नाम नदी के रूप में बहने लगती है जिसे बालीवासी **गंगा** कहते हैं। इसी गंगा का जल बालीद्वीप के समस्त धार्मिक अनुष्ठानों में प्रयुक्त होता है।

उत्तर दक्षिण की ओर प्रवाहित ये दोनों नदियां अन्ततः मिल जाती हैं, समुद्र-संगम से कुछ पूर्व ही पकेरिसार तथा पैतान् की अन्तर्वेदी को ही अमरावती क्षेत्र कहा जाता है। जो कि बालीद्वीप का सर्वोत्कृष्ट साधना क्षेत्र है।

परन्तु बालीवासी किसान पेतान के पानी को मयदानव का रक्त ही मानते हैं और किसी भी मूल्य पर इसके जल से अपने 'सावाह' धान के खेत की सिचाई नहीं करते। *उसनाबाली* में वर्णित मय कथा को पढ़कर तथा पेतान्-विषयक इस लोकपरम्परा को देखने के बाद जब मैंने वाल्मीकि रामायण का **ततो रक्तजलं प्राप्य शोणाख्यं शीघ्रवाहिनम्** अंश पढ़ा तो मन पुलकित हो उठा। निश्चय ही रामायण का शोणनामक शीघ्रवाहि तथा रक्त जल नद 'पेतान' ही हो सकता है।

इसी सन्दर्भ में वाल्मीकि 'लोहितसागर' की भी चर्चा करते हैं जो एक दूसरा विलक्षण सत्य है। वस्तुतः जावा तथा बालीद्वीप का मध्यवर्ती समुद्र तीन-चार किलोमीटर ही लंबा है। जावा से ज्यों ही हम बाली के सागर तट पर पहुंचते हैं तो सारी जलराशि एकदम लाल दिखती है, मानो सागर जल में किसी ने लाल रंग घोल दिया हो। गिलिमानुक नामक इस सागर तट का यह विलक्षण दृश्य देखने के लिये हजारों पर्यटक प्रतिदिन यहां आते हैं। सागर जल की इस लालिमा का कारण है यहां की मूँगें की चट्टानें जिनके प्रतिबिम्ब के ही कारण जल रक्त के समान परिलक्षित होता है।

तो क्या महर्षि वाल्मीकि इसी को 'लोहितसागर' कहते हैं ?

शिशिर के अनन्तर ही रामायणकार निषध पर्वत का वर्णन करते हैं। यह पर्वत बाली के पूर्ववर्ती लोम्बोक द्वीप का 'माउंड रिञ्जानी' होना चाहिए एक ऐसे पर्वत

का भी वर्णन वाल्मीकि करते हैं जिसके शिखर हिमाच्छादित हैं। यह पर्वत बोर्नियों (वर्तमान कालीमंत्रान्) में विद्यमान हैं।

इस शृङ्खला में इण्डोनेशिया का अन्तिम द्वीप आता है ईटियङ्गय (न्यूगिनी) इस द्वीप के आगे प्रशान्तमहासागर का अनन्तविस्तृत क्षेत्र है। ईरियङ्ग तथा हवाईद्वीप-समूह (अमरीका) के बीच का यह सागर सचमुच अन्धतमस् से आच्छन्न तथा अगम्य है। सूर्य एवं चन्द्रमा का प्रकाश भी देखने में सहायक सिद्ध नहीं होता है। यह कोई कल्पना नही; एक अनुभव -सिद्ध सत्य है। सागरतट पर कहीं खड़े हों तो आकाश एवं समुद्र की कालिमा समन्वित होकर एक अद्‌भुत अन्धकार की सृष्टि कर देते हैं।

उदित होता हुआ सूर्य सर्वप्रथम इसी भूखण्ड का संस्पर्श करता है। अत: वाल्मीकि इस द्वीप को उदयवर्ण कहते हैं। यहीं है वह प्रसिद्ध लोकालोक पर्वत, जिसके शिखरों पर सूर्य की किरणें सर्वप्रथम पडती हैं। चूंकि यहीं से पृथ्वी का प्रारम्भ होता है अत: इसे **पृथ्वी का प्रवेशद्वार** तथा **पूर्वा दिक्** भी कहते है।[१]

इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृतवाङ्मय में समुद्रवर्ती द्वीपों का अत्यन्त विश्वसनीय तथा विस्तृत वर्णन अत्यन्त प्राचीन काल से सुरक्षित है। सम्भवत: इन द्वीपों के इन्ही आकर्षक विवरणों से प्रभावित होकर भारतीयों ने साहसिक यात्राएं की तथा यहां अपने उपनिवेश स्थापित किये। इस यात्रा का एक और ठोस कारण था।

भारतीय धर्मशास्त्रीय व्यवस्था के अनुसार केवल ज्येष्ठ राजकुमार को ही शासन का उत्तराधिकार मिलता था। अन्य राजकुमार प्राय: प्रान्तपति स्थापित होकर, बड़े भाई की अधीनता में कार्य करते थे। इस व्यवस्था से असन्तुष्ट अनेक महत्वाकांक्षी राजकुमारों ने अपना भाग्य आजमाने के लिये इन समुद्री द्वीपों की यात्राएं की तथा उनमें से अनेक अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित करने में सफल भी

---

१. पूर्वमेतत्कृतं द्वारं पृथिव्या भुवनस्य च।
सूर्यस्योदयनञ्चैव पूर्वा ह्येषा दिगुच्यते॥ रामा. कि. का. ४०-६४.

हुए। ये राजकुमार अपने पुरोहितों, सामन्तों तथा निष्ठावान् सेवकों के साथ, बड़ी बड़ी नावों पर बैठकर, भीषण झंझावातों से जूलते हुए इन द्वीपों में पहुंचे तथा स्नेह-प्रेम के बल पर वहां के शास्ता बन सके। ये यात्राएं कब, कहां, कैसे और किन्होंने प्रारंभ की ? यह कहना कठिन है प्रमाणाभाव में। परन्तु जावा, बाली आदि की पल्लवप्रमाणित लिपि को देखते हुए हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि प्राथमिक यात्राएं दक्षिण भारतीय चोलों तथा कलिङ्गवासियों ने की। प्रसिद्ध इतिहासकार **नीलकण्ठ शास्त्री** का यही मन्तव्य है। परन्तु **डा. आर. सी. मजूमदार** प्राथमिक यात्राएं उत्तरभारतीयों द्वारा सम्पन्न मानते हैं।

मेरी दृष्टि में यात्राविषयक ऐसा कोई भेद-भाव करना उचित नहीं क्योंकि सामुद्रिक द्वीपों का परिचय ईसवी शती के पूर्व ही समस्त भारतवासियों को था। अत: सामुद्रिक द्वीपान्तर यात्राएं सभी ने की। हां, यह अवश्य कहा जा सकता है कि उत्तर भारतीयों ने ये यात्राएं स्थलपथ से तथा दक्षिणात्यों ने प्राय: जलपथ से सम्पन्न की। स्थलपथ भारत से सुवर्ण भूमि (वर्मा) होता हुआ कम्वुज फूनान और चम्पा तक जाता। ठीक यूं ही जलपथ उड़ीसा के गंजाम जिले में स्थित गोपालपुर से अन्दमाननिकोबार होता हुआ कटाह (केडुाह) तक जाता था। कटाह में विश्राम के अनन्तर ये सार्थवाह मलक्का की खाड़ी पार कर इण्डोनेशिया के विभिन्न द्वीपों की ओर जाते थे। इन स्थल तथा जलमार्गों की पुष्टि चीनी साक्ष्यों से भी होती है।

केडुाह (मलेशिया) के एक देवालय के ध्वंसावशेष से एक मृण्मय पदक (Easthen Tablet) मिला है जिस पर लिखा है – **महानाविकस्य बुद्धगुप्तस्य**। **डा. मजूमदार** का एतद्तिषयक निष्कर्ष यह है कि **बुद्धगुप्त** मुर्शिदाबाद (बंगाल) का रहने वाला एक समृद्ध व्यापारी था। इससे कटाहद्वीप की यात्रा की तथा वहाँ भव्य देवालय का निर्माण कराया। प्रसिद्ध हिन्दी कवि **श्री जयशंकर प्रसाद** जी ने इसी बुद्धगुप्त को नायक बना कर *आकाशदीप* नामक कहानी लिखी।

निश्चय ही **बुद्धगुप्त** उत्तर भारतीय है। परन्तु दूसरी ओर, मध्य जावा की बुकिर पहाड़ी पर मतराम संजय द्वारा बनाये गये पूतिकेश्वर महादेव मन्दिर के विषय में यह लिखित प्रमाण भी उपलब्ध है कि यह शिवलिङ्ग दक्षिणभारत के

कुञ्जरकुञ्ज नामक स्थान से मंगवाया गया। डा. मजूमदार स्वयं कुञ्जरकर्ण को चोलदेश में कहीं अवस्थित मानते हैं। इसी प्रकार चम्पा के प्रख्यात् **ईशानभद्रेश्वर** शिवलिङ्ग के भी दक्षिणभारत से ही लाये जाने की पुष्टि, चम्पा के ऐतिहासिक विवरणों में प्राप्त होती है। इन साक्ष्यों से स्पष्ट है कि द्वीपान्तर यात्राएं एक ही कालखण्ड में सम्पूर्ण भारतवासियों द्वारा की गई।

यवद्वीपीय हिन्दू साम्राज्य : स्थापना एवं विस्तार

बृहत्तर भारत के स्थलीय एवं जलीय भूखण्डों की इस विस्तृत चर्चा का एकमात्र उद्देश्य यही है कि पाठक इन क्षेत्रों में रामायण-संस्कृति की प्रतिष्ठापना की पृष्ठभूमि समझ सके। जहां कहीं भी भारतीय उपनिवेश स्थापित हुए वहीं भारतीय धर्म, संस्कृति, साहित्य एवं आचरण-संहिता की भी प्रतिष्ठा हुई। माईसोन, पोनगर, डियोडियोगं (चम्पा) अंकोरवारट (कम्बुज) प्राम्बनान, मलंग, पन्तरण तथा बोटोबुडुर (जावा) आदि के भव्य मन्दिर तथा उनके अवशेष इस तथ्य के साक्षी हैं कि कभी इन राष्ट्रों में हिन्दू धर्म, भारत की ही तरह जीवन्त तथा प्राणवान् था।

यद्यपि **सुवर्णद्वीप** की वास्तविक सत्ता के विषय में अभी भी ऐतिह्यविद एकमत नहीं है। जैसा कि प्रारंभ में ही कहा गया है कि यूनानी तथा अरबी इतिहासकार **क्रिसे** (Chris) तथा जाबुज के रूप में प्रायः प्राचीन श्रीविजय साम्राज्य (सुमात्रा) को ही **सुवर्णद्वीप** मानते हैं। जाबुज शब्द श्रीविजय का ही अपभ्रंश प्रतीत होता है।

परन्तु सुवर्णद्वीपविषयक यूनानी एवं अरबी स्थापनाएं उतनी विश्वनीय नहीं है, जितनी कि भारतीय। उसका कारण यह है कि भारतीयों को सुवर्णद्वीप का प्रत्यक्ष ज्ञान था। *पुराणों* तथा *रामायण-महाभारत* में जिसे सुवर्णद्वीप कहा गया है वह निश्चय ही वर्तमान जावा है। *रामायण, किष्किन्धा काण्ड* (अ० ४० श्लोक ३०) में इसका स्पष्ट प्रमाण है—

यत्नवन्तो यवद्वीपं सप्तराज्योपशोभितम्।
सुवर्णरूप्यकद्वीपं सुवर्णाकरमण्डितम्॥

अर्थात् सुवर्णाकरमाण्डितं सप्तराज्योपशोभितं, सुवर्ण-रूप्यकद्वीपं यवद्वीपं यत्नवन्तः (अन्विष्यत)

'सोने की खानों से सुशोभित, सात राज्यों वाले, सोने तथा चांदी के द्वीप-स्वरूप यवद्वीप को मलपूर्वक खोजना।'

कुछ इतिहासकारों ने प्रस्तुत श्लोक में, यवद्वीप तथा सुवर्णरूप्यकद्वीप की पृथक् परिगणना के कारण सुवर्णद्वीप को यवद्वीप से पृथक् मान लिया है। परन्तु यह उनका कोश भ्रममात्र है। वस्तुतः इस श्लोक में सारे विशेषण यवद्वीप के ही हैं जो कि सुवर्णरूप्यकद्वीप से सर्वथा अभिन्न है।

दूसरी बात यह है कि यदि सुवर्णरूप्यकद्वीप पूर्वोल्लिखित यवद्वीप से पृथक होता तो अगले श्लोक में रामायणकार **यवद्वीपमतिक्रम्य शिशिरो नाम पर्वतः** न कह कर **सुवर्णरूप्यकद्वीपमतिक्रम्य शिशिरो नाम पर्वतः** ही कहता। 'यवद्वीपमतिक्रम्य' कहने से **महर्षि वाल्मीकि** का यह मन्तव्य स्पष्ट हो जाता है कि वह जावा को ही सुवर्णद्वीप मानते हैं। प्रसिद्ध इतिहासविद **डा. आर. सी. मजूमदार** ने भी यवद्वीप (अथवा यवसाम्राज्य) को ही सुवर्ण द्वीप माना है।

चम्पा, कम्बुज, श्रीविजय तथा यवद्वीप की शासन सत्ताओं में समय-समय पर यद्यपि उतार चढ़ाव आता रहा है तथापि समूचे प्रशान्तमहासागरीय क्षेत्र में यवसाम्राज्य की सम्प्रभुता पराकाष्ठा पर रही है। **सञ्जय** (७३३ ई.) **वतुकुर बलितुंग** (८९८-९२० ई.) **शिण्डोक** (९२९-९४७ ई.) एरलंग (१०१० -१०४९) कृतनगर (१२५४-१२९२ ई.) तथा **हयम वुरुक** (राजसनगर १३५०-१३८९ ई.) के शासनकाल में महान् यव साम्राज्य की सीमाएं चम्पा तथा कम्बुज तक जा पहुंची थीं। मजपहित वंशी सार्वभौम सम्राट राजसनगर के **राजकवि प्रपञ्च** द्वारा प्रणीत *नागरकृतागम* नामक इतिहास ग्रंथ में यव-साम्राज्य की जो सीमाएं दी गई हैं, उनसे इस साम्राज्य की सम्प्रभुता का अनुमान किया जा सकता है। प्रपञ्च के साक्ष्यानुसार मलायू सुमात्रा के २४तुञ्जुङ्गपुर (बोर्नियो) के २३ पहंग (मलेशिया) के १६ तथा पूर्वदिशा के ३१ द्वीप सम्राट राजसनगर के अधीन थे।

यवद्वीप अथवा जावा सुमात्रा के ठीक पूर्व में हैं। पूर्व और पश्चिम में अपने नाम के ही अनुरूप यव (जी) के आकार में पहला वह द्वीप ईसा की प्रारम्भिक शती से पन्द्रहवीं शती ई. के अन्तिम चरण तक भारतीय धर्म, दर्शन, साहित्य, राजनीति एवं जीवन-पद्धति का अमोघ प्रहरी रहा है। इन डेढ़ हजार वर्षों में जावा के अनेक चक्रवर्ती सम्राटों ने मनु, इक्ष्वाकु, राम और युधिष्ठर-सरीखा अक्षय-यश प्राप्त किया। उन्होंने अथाह सागर की विस्तृत छाति पर अपने दिग्विजयी जहाजी बेड़ों से सैन्य-अभियान सम्पन्न किये और चम्पा (वियतनाम), कम्बोज, अयुया (थाई-लैण्ड) तुञ्जुङ्कपुर (बोर्नियो) मलयु तथ श्रीविजय (सुमात्रा) जैसे दूरवर्ती देशों को भी अपने अधीन किया। **महाकवि प्रपञ्च**-प्रणीत *नागरकृतागम* में प्रस्तुत सम्राट (हयम वुरुक) राजसनगर (१३५०-८९ ई.) का दिग्विजय-वर्णन इसका साक्षी है।

जावा का प्रारम्भिक कुछ शतियों का इतिहास अभी भी अन्धकार में है। परन्तु सातवीं शती के अन्त से उसका राजनयिक स्वरूप स्पष्ट होने लगता है। मध्यजावा का मत-राम साम्राज्य (सन् ७३२-१०४९ ई.) जिसमें सञ्जय[१], वलितुंग, दक्षोतम्, शिण्डोक तथा एरलंग जैसे प्रतापी सम्राट हुए। एरलंग के सम्बन्ध (१०१०-४९ ई.) विलग (कलिंग), आर्य, गोल (गौड़), कर्णाटक, चोलिक, मलयल, पाण्डिकिर (पाण्डर तथा चेर) तथा द्रविड़ सरीखे भारतीय राजवंशों से भी थे।[२] जावा तथा वाली की परम्परा में एरलंग विष्णु का अवतार माना गया है। उभयत: लक्ष्मी से गरुडवाही विष्णु को सम्राट की राज मुद्रा में अंकित किया था।

पूर्वी जावा का कडिरी-साम्राज्य (१०५०-१२२२ ई.) तथा सिंहसारि-साम्राज्य (१२२२ से १२९२ ई.) अवान्तर युग में जावा का श्रीवैभव बढ़ाता रहता। कडिरी

---

१. दक्षिणभारतीय पल्लवलिपि तथा संस्कृत भाषा में लिखे गये १२ श्लोकों से युक्त सम्राट संजय की प्रस्तुति, मध्यजावा के केडू प्रान्त में स्थित बुकिट पहाड़ी की उपत्यका में चांगल नामक स्थान में निर्मित एक शिव मन्दिर के भग्नावशेषों से प्राप्त हुई है। इस शिलालेख की तिथि शकसंवत् ६५४ (७३२ ई. है।) चरितपरहयगंन नामक ग्रन्थ में भी सञ्जय की दिग्विजय का वर्णन है।

२. सविस्तार द्रष्टव्य एरलंगप्रशस्ति (कलकत्ता म्यूजियम्)

के कामेश्वर, जयभय तथा कृतजय और सिंहसारि के जयविष्णुवर्धन तथा कृतनगर (१२५४-९२ई.) संस्कृत साहित्य, धर्म, दर्शन, तथा बौद्ध तंत्र के महान् उन्नायक रहे। प्रम्बनान तथा पनतरंन् के अद्भुत हिन्दु मन्दिर इन्हीं नरपतियों की अक्षय कीर्ति के साक्षी हैं। कृतनगर, बौद्ध-सुभूतितंत्र का प्रकाण्ड-पंडित था। मृत्यु के बाद उसे **शिवबुद्ध** के रूप में जनता पूजने लगी। वह शैव तथा बौद्ध आगम का समन्वय-बिन्दु था।

जावा के हिन्दू-साम्राज्यों में अन्तिम तथा **मजपरित-साम्राज्य** (१२९४-१४७८ ई.) जिसकी राजधानी कडिरि ओर सिंहसारी से और पूर्व में बान्तस नदी के तट पर मजपहित अथवा तिक्तविल्व (मजा = विल्व, पहित = तिक्त) नगर में केन्द्रित थी। इस वंश का अन्तिम महान सम्राट हयम वुरुक अथवा राजसनगर (१३५०-८९ ई.) था जो महान् दिग्विजयी, विद्या-व्यसनी तथा प्रजाहवत्सल था। उसके साम्राज्य में पूर्वी जावा का राज्य उत्तर में फिलीपीन्स, पूर्व में न्यूगिनी, दक्षिण में आस्ट्रेलिया तथा पश्चिम अण्दमान-निकोबार तक व्याप्त हो गया। राजसनगर के **राजकवि प्रपंच**-प्रणित *नागरकृतागम* में मलायु (सुमात्रा) के २४, तुञ्जुङगपुर (बोर्नियो) के २३, पहंग (मलेशिया) की १६ तथा पूर्व दिशा के ३१ द्वीप सम्राट हयमवुरुक (राजसनगर) के अधीन बताये गये हैं।

मजपहित-साम्राज्य यद्यपि अग्नि एक शती तक स्थिर रहा परन्तु मल्यु और पहंग की ओर से इस्लाम बड़ी तीव्रता से जावा को आंतकित कर रहा था। पारस्परिक राग द्वेष एवं सत्तालोभ के के भूखे अनेक हिन्दू सामन्त स्वयं भी इन सुल्तानों को आमंत्रित कर रहे थे। उनके सामन्त इस्लाम स्वीकार कर छोटे-मोटे भूखण्डों के 'सुल्तान' भी बन चुके थे। इन्हीं वात्याचक्रों में अन्तिम मजपहित शासक रणविजय (१४७८-८६ ई.) के साथ मजपहित साम्राज्य का अन्त हो गया। १५२७ ई. में मलयु-सुल्तान फतहिल्लाह ने उत्तरी जावा के पञ्जरनवंशी हिन्दू-नरेश का भी विनाश करके इस्लामी राज्य को जावा में पूर्णत: स्थापित कर दिया। इस प्रकार १५वीं शताब्दी ई. के अन्त तक जावा का इस्लामीकरण सम्पन्न हो गया।

जावा के पराजित नरेश के उत्तराधिकारी ने अपने समस्त पुरोहितों,सामन्तों, कलाकारों एवं कुटुम्बियों के साथ भागकर बाली-द्वीप में शरण ली । उसने द्वीप के दक्षिण पूर्व भाग में बाली के **महामेरु गुनंग अगुंग** (शिखर १०५६० फुट) के समीप गेल्गेल में **देव-अंगुग** के नाम से स्वयं को बाली का शासक घोषित कर दिया । उसके अन्य सामन्त भी 'रक्षाकवच' बन कर द्वीप के विभिन्न भागों में स्थापित हुए और कालान्तर में वे सभी छोटी-रियासतों के शासक हो गये । डच-आक्रमण के समय बालीद्वीप में गेल्गेल, बांदुग, नियान्यार, तबानान्, मेंग्वीं, बांगली, क्लुंगकुगं, करेंगसेम, बुलेलेंम तथा जिम्बान—ये दस रियासतें थी (अब गेल्गेल तथा क्लुगंकुंग एवं मेंग्वीं तथा तबानान के एकीकरण के फलस्वरूप बाली द्वीप में कुल आठ ही कमिश्नरियां (कभूपतान) शेष रह गई हैं ।

जावा तथा बाली द्वीप राजनयिक दृष्ट्या प्रारंभ से ही एक रहे हैं फलत: दोनों द्वीपों की भाषा एवं साहित्यसर्जना भी समान रही हैं । **सम्राट् सञ्जय** ने सर्वप्रथम बाली पर विजय प्राप्त की थी । कालान्तर में जब यवद्वीप के मतरामवंशी शासक **मकुटवंशवर्धन** ने अपनी कनिष्ठ पुत्री 'गुणप्रियधर्मपत्नी', **महेन्द्रदत्ता** का विवाह बालीनरेश **धर्मोदयनदेववर्मा** से कर दिया और उदयन -महेन्द्रदत्ता के पुत्र कुमार **एरलंग** का विवाह अपनी मौसेरी बहन (जावा नरेश धर्मवंश की पुत्री) के साथ सम्पन्न हो गया— तब एक बार पुन: बाली तथा जावा समन्वित साम्राज्य बन गये ११वीं शती में । इसी प्रकार **सिंहसारिसम्राट् कृतनगर** द्वारा १२८४ ई. में और अन्तत: महाप्राप्य गजमद द्वारा (सम्राट् राजसनगर के लिये, १३४३ ई. में बालीद्वीप पर जावा की प्रभुसत्ता स्थापित की गयी । मध्यवर्ती अवधि में, बाली के शासक यवद्वीपीय समप्रभुता से मुक्त होकर शासन करते रहे । बाली के प्रमुख शासकों में कुछ प्रमुख नाम हैं— **उग्रसेन**,(९१५-३२ ई.) **तपनेन्द्रवर्मदेव** (९५५ ई.) **चन्द्रभयसिंहवर्मदेव** (९६२ ई.) **जनसाधुवर्मदेव** (९७५ ई.) **श्रीविजयमहादेवी** (९८३ ई.) **केसरीवर्मदेव** (९८४-९८८ ई.) **धर्मोदयनदेववर्मा** (९८९-१०२२ई.) तथा **अष्टासुरा रत्नभूमि बण्टेन** (१३ वीं शती ई.) **देव अगुंग** (१४७८ ई.) तथा **बाटु रेगांग** (१६वीं शती ई.)

प्राचीनजावी-साहित्य : उद्भव एवं विकास

एच्. कर्न. सी. हुक्कास, जुइंनबाल, थ्योडोर पिगॉड आदि पाश्चात्त्य तथा **आर. गोरिस** एवं **पर्वतजरक** सरीखे जावी विद्वानों ने एकमत से यह तथ्य स्वीकार किया है कि सुवर्णद्वीप (जावा तथा बाली) में लेखनकला भारत से ही आयी। पश्चिमी जावा में **सञ्जय** द्वारा भारतीय -साम्राज्य की स्थापना से पूर्व यवद्वीप का अपना कोई लिखित वाङमय नहीं था। न जावा की अपनी कोई साहित्यिक भाषा थी, न ही अपना कोई देवशास्त्र। फलत: देववाणी संस्कृत एवं स्थानीय जावी बोली को मिश्रित कर विद्वान् पंडितों ने एक प्रौढ साहित्यिक भाषा का निर्माण किया जिसे **कवि** कहा गया। यह संस्कृत के ही समान सौशब्द्य एवं अर्थगाम्भीर्य का वहन करने में समर्थ भाषा थी। इसी भाषा में ईसा की प्राय: आठवीं शती से २०वीं शती के प्रारम्भिक चरण[१] तक जावा तथा बाली में उत्कृष्ट कोटि के अपार वाङमय की सर्जना हुई। कवि भाषा को ही डच विद्वानों ने ओल्ड जावानीज (Old Javanese) नाम दिया है।

वस्तुत: जावी कवि भाषा के दो रूप हैं—हिन्दुसाम्राज्ययुगीन कवि भाषा, जिसमें स्थानीय जावी के साथ एकमात्र संस्कृत शब्दावली तथा संस्कृत छन्दों का वर्चस्व रहा। दूसरा, सल्तनतकालीन (१५वीं शती ई. में जावा का इस्लामीकरण होने के बाद) कवि भाषा, जिसमें संस्कृत के स्थान पर अरबी-फारसी शब्दावली का वर्चस्व रहा। डच विद्वान् इन्हीं दोनों को क्रमश: प्राचीन जावी (Old Javanese)

---

१. २० सितम्बर १९०६ ई. के डेनपसार बाली की राजधानी के भीषण 'पुपुतान' (आत्माहुति) युद्ध के अनन्तर बालीद्वीप पर अन्तिम रूप से डचों का प्रभुत्व स्थापित होने तक।

तथा नव्यजावी (New Javanese) कहते हैं । इस युग के कवियों तथा लेखकों ने प्राचीन कवि भाषा की भावसंपदा तथा मञ्जुलपदशय्या के समक्ष अपनी भाषा को 'हीनगुण' अनुभव करते हुए, बड़ी ईमानदारी से 'कविमिरिंग' (Kavi Miring) अर्थात् अधःस्तरीय कवि भाषा कहा । कुछ सल्तनतकालीन साहित्यकारों ने अपनी काव्य भाषा को 'जर्वा' अथवा 'सजर्वा' भी कहा । वस्तुतः सजर्वा संस्कृत शब्द *सार्जव* है । जिसका अभिप्राय है- आर्जवयुक्त जावी भाषा, सीधी-सादी कवि भाषा (Sloping kavi) ।

प्राचीन कवि भाषा में ८०% रचनाएं तो संस्कृत मूलक हैं । संस्कृतमूलक ये रचनाएं भी तीन प्रकार की होती हैं : १. संस्कृत ग्रन्थों का अविकल अनुवाद २. संस्कृत कृतियों की पुनः प्रस्तुति (Reproduction) ३. संस्कृत कथानकों के आधार पर सर्वथा मौलिक ग्रंथसर्जना ।

महाभारत के ९ पर्वों का (आदि-विराट-उद्योग-भीष्म-स्त्री-आश्रमवास-मुसल-प्रास्थानिक एवं स्वर्गारोहण) गद्यानुवाद मतराम नरेश **धर्मवंश** (९९०-१००७ ई.) तथा उसके जामातृ उत्तराधिकारी **एरलंग** (१०१०-४९ई.) के शासन काल में सम्पन्न हुआ ।

वाल्मीकीय रामायण, **कालिदास**प्रणीत *रघुवंश* एवं *कुमारसंभव,* **भारवि**प्रणीत *किरातार्जुनीयम्* आदि महाकाव्यों की प्राचीन कवि भाषा में पुनः प्रस्तुति हुई । परन्तु अनेक संस्कृत कथानकों पर सर्वथा मौलिक रचानायें हुई जैसे -बौद्ध सुतसोम जातक के आधार पर **महाकवि तन्तुलट** द्वारा १४वीं शती. ई. में *सुतसोमककविन्* का प्रणयन । सल्तनतयुगीन कवियों (सिन्धुशास्त्र, यशादिपुर प्रथम, यशादिपुर द्वितीय, पाकुभुवन आदि) ने भी अनेक प्रख्यात प्राचीन महाकाव्यों को नव्य जावीं में नये सिरे से लिखा जैसे—**यशादीपुर** प्रणीत *सीरतकाण्ड*(रामायणककविन्) तथा व्रतयुद (प्राचीन सेडाहप्रणीत भारतयुद्ध) **सुल्तान पाकुभुवन** प्रणीत *मिन्तराग* (प्राचीन अर्जुनविवाहककविन्) आदि ।

शैली की दृष्टी से जावा तथा बाली का सम्पूर्ण वाङ्मय (प्राचीन एवं नव्य जावी) दो प्रकार का है—काण्ड (पद्य) एवं पर्व (गद्य) काण्ड के अन्तर्गत **ककविन्** (काव्य) आते हैं तथा पर्व के अन्तर्गत **तुतुर**(= तत्वग्रन्थ, शास्त्र) **पाकिम**(रंगमंञ्चीय ग्रन्थ) तथा **बाबद** (इतिहास) की गणना है। उपर्युक्त शीर्षकों के अन्तर्गत प्रणीत ग्रन्थों की संख्या इतनी भूपसी तथा गुणवत्ता इतनी उत्कृष्ट है कि उसे किसी भी प्रकार संस्कृत से हीन नहीं माना जा सकता।

छन्द की दृष्टि से जावा तथा बाली का वाङ्मय त्रिविध है:

१. **ककविन्** - जो प्राचीन (संस्कृत) छन्दों-*इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, वंशस्थ, स्रग्धरा* आदि में लिखा गया है। यह वाङ्मय मात्र प्राचीन जावी भाषा का है। अर्थात् हिन्दूसाम्राज्य में प्रणित।

२. **किडुङ्ग**–जोकि *तेगंहन* छन्दों में लिखा गया है। तेगंहान का अर्थ है मध्यम्। सल्तनतकालीन कवियों ने भी अपनी काव्य सर्जना में प्रयोग तो किया प्राचीन संस्कृत छन्दों का ही, परन्तु छन्दश्शास्त्र से अनभिज्ञ होने के कारण वे उसका शुद्ध प्रयोग नहीं कर सके। फलत: आत्मप्रयुक्त प्राचीन संस्कृत छन्दों को उन्होंने *तेंगहान* की संज्ञा दी।

३. **गेगुरितान्**– 'गुरित' क्रिया का अर्थ है वर्णन करना (To describe) अत: गेगुरितान का अर्थ है –सम्यग् वर्णन। यह साहित्य जावा तथा बाली के स्थानीय छन्दों में लिखा गया है जिन्हें *मचपत* कहते हैं। *मचपत*(मूलशब्द मञ्चपत) का अर्थ है- चार मित्र ! इस प्रकार इस शब्द का लाक्षणिक अर्थ है घरेलू अथवा गृहनिर्मित छन्द। वस्तुत: स्रग्धरा सरीखे भारी भरकम छन्द, नवयुगीन मुस्लिम कवियों के लिये दुस्साध्य थे। फलत: वे *तेम्बाङ्ग गिडे* (दीर्घवृत्त, Great verse) के स्थान पर *तेम्बाङ्ग चिलिक* (लघुवृत्त, Small verse) का अन्वेषण कर रहे थे।

इस अन्वेषण की ही परिणति *मचपत* छन्दों के रूप में प्रकट हुई। ये एक प्रकार से सुवर्णद्वीप के देशी छन्द थे, जिनके बीज लोकगीतों (Pantum) तथा बच्चों की लोरियों में विद्यमान थे। मचपत छन्दों में चरणों (कम से कम चार,अधि

अधिक दश) तथा चरणाक्षरों (तीन से बारह अक्षर) को व्यवस्थित करने की स्वतंत्रता थी।

इन्हीं मचपत छन्दों में प्रणीत काव्यवृत्ति को **गेगुरितान** कहा गया। मचपत छन्दों की संख्या १५ है जिनमें प्रमुख है – *गिनड, सिनोम, कुमम्बड़, देमुङ्ग दुर्म, सेमरन्दन, डण्डङ्ग गुल, पंगकुर तथा गम्बूह*।[१]

जैसा कि पहले कहा जा चुका है १४७८ ई. में हुए मुस्लिम् आक्रमण से भयभीत होकर मजपहितवंशी जावा-नरेश अपने कुटुम्ब तथा सामन्तों के साथ, अपने ही अधीनस्थ राज्य बालीद्वीप में भाग आया और द्वीप के पूर्वभाग में स्थित गेल्गेल नगर में उसने स्वयं को **देव अगुंग** के नाम से बाली का शासक घोषित कर दिया। आगे भी इस वंश के सभी के नरेश अपनी उपाधि **देव अगुंग** (श्रेष्ठ नरपति) ही लिखते रहे। १६वीं शती ई. में इसी बंश का नरपति हुआ– **बाटु टेगांग**, जिसके शासनकाल में हिन्दू धर्म, साहित्य तथा संस्कृति की अभूतपूर्व पुनर्व्यवस्था हुई। प्राचीन ककवीनों के शुद्ध पाठ तैयार किये गये तथा नई सर्जनाएं भी हुई। **थ्योडोर पिगॉड** ने ठीक ही समीक्षा की है –

In Bali, up to the end of the nineteenth century authors took a pride in Their ability of writing Javanse-Balanese epic poems in Indian metres.

– Literature of Java p. 16.

१६वीं से १९ वीं शती के तीन सौ वर्षों में बाली के **देव अगंग** के सरक्षण में जावी साहित्य की परम्परा का अद्‌भुत विकास हुआ। जावा के समस्त प्राचीन ककवीनों की शुद्ध प्रतिलिपियां तो तैयार कर ही गयी[२] प्राचीन जावी तथा प्राचीन

---

१. सविस्तार द्रष्टव्यः जावा तथा बाली की कविता में छन्दोविधान (डा. राजेन्द्र मिश्र) गंगानाथझां के.सं. विद्यापीठ पत्रिका, दिसम्बर १९८६ई.

२. The ancient mythological poems are preserved in Bali, in more correct form than in Java, – History of Java by Raffles.

बाली (ओल्ड जावानीज तथा ओल्ड वालीनीज) भाषा में उच्चस्तरीय तथा बहुमुखी अपार नवीन साहित्य भी लिखा गया। बाली का गांग (वाद्य) लेगांग (नृत्य) तथा वायांग (नाट्य) उन्नति के शिखर पर पहुंच गया। ककवीन (काव्य) तुतुर (तत्त्वशास्त्र अथवा दर्शन) किङ्ग एवं गेगुरितान (संस्कृत छन्दों के स्थान पर बाली के अपने *तेगहान तथा मचपत* शीर्षक छन्दों में लिखा गया काव्य (वाङ्मय) का बाली में अम्बार लग गया। **उदयन यूनिवर्सिटी** के *लान्तार* कक्ष (पाण्डुलिपि) में आज भी नौ हजार पाण्डुलिपियां ताडपत्रों में सुरक्षित हैं। हालैण्ड के **लीडेन विश्वविद्यालय** में भी बाली एवं जावा की पाण्डुलिपियां का विशाल संग्रह है। व्यक्तिगत संग्रहालयों की भी संख्या कुछ कम नहीं है।

उधर जावा में सल्तनत स्थापित होने के बाद साहित्य सर्जना का नया दौर प्रारम्भ हुआ। १६वीं तथा १७वीं. शती में तो अधिकांश वाङ्मय अरबी फारसी काव्य तथा इस्लामी धर्म एवं दर्शन से प्रभावित लिखा गया। इसे समीक्षकों ने *पसिसिर-साहित्य* कहा है क्योंकि इस साहित्य के केन्द्र जावा के पूर्वी एवं सागर तटवर्ती उत्तरी नगर थे, जिन्हें पसिसिर कहा जाता था। परन्तु १८वीं १९वीं शती को भारतमूलक प्राचीन जावी-साहित्य का पुनर्जागरण काल माना जाता है। इन दो शतियों में **कर्तासुरा, सुराकर्ता** तथा **योग्यकर्ता** के साहित्यप्रेमी सुल्तानों तथा उनके संरक्षित कवियों —**शास्त्रनगर, सिन्धुशास्त्र कुसुमादिलग** आदि ने अभूतपूर्व उच्चकोटि की साहित्यिक रचनाएं कीं। **शास्त्रनगर** (अपरनाम यशादिपुर प्रथम) ने *सीरतकाण्ड* नाम से अपनी रामकथा इसी युग में लिखी।

इस प्रकार जावा तथा बाली का सम्पूर्ण साहित्य चार प्रमुख काल-खण्डों में विभक्त है—

१. प्राचीन जावी-साहित्य (१०वीं से १५वी शती ई. तक)

यह साहित्य मध्य एवं पूर्वी जावा के हिन्दू-नरेशों के संरक्षण में, व्रान्तस **ओपाक**, प्रागा तथा सरयू नदियों की उपत्यका में प्रणीत किया गया। यह साहित्य पूर्ण रूप से *रामायण, महाभारत*, **भट्टि, कालिदास** एवं **बौद्ध**-कृतियों तथा संस्कृत

छन्दों पर आधारित है । जावा की प्राचीन 'कवि' लिपि में निबद्ध यह संस्कृत बहुल वाङ्मय **ककवीन** (काव्य) के नाम से प्रख्यात है ।

२. जावी-बाली-साहित्य (१५वीं से १९वीं शती ई. तक)

जावा के इस्लामीकरण के अनन्तर बाली द्वीप में विकसित भारतीय काव्य परम्परा प्राचीन जावी (कवि) था प्राचीन **बाली** – दोनों ही भाषाओं में समानान्तर रूप से लिखी गयी । बाली भाषा में संस्कृत छन्दों के स्थान पर तेंगहान तथा मचपत छन्दों का प्रयोग हुआ जिनसे क्रमशः *किड्ड एवं गेगरितान* साहित्य की सर्जना हुई ।

३. जावी पसिसिर-साहित्य (१६वी १७वीं. शती ई.)

संस्कृत रहित नव्य जावी भाषा में लिखा गया अरबी फारसी तथा इस्लामी धर्म दर्शन से प्रभावित साहित्य जिसकी रचना *पसिसिर* नाम से विख्यात सुरावाया, ग्रसिक (पूर्व) सेरबोन, वान्तेन (पश्चिम) तथा मदुरा द्वीप (उत्तर) में हुई ।

४. पुनर्जागरणकालीन अभिजात जावी-साहित्य (१८वी १९वीं शती ई.)

कर्तासुरा, सुराकर्ता तथा **योग्यकर्ता** शासकों के संरक्षण में भारतमूलक प्राचीन जावी-साहित्य का पुनर्लेखन । **पुजंग** नाम से प्रख्यात इस युग के साहित्य-कारों ने उच्चकोटि का साहित्य नव्य जावी-भाषा में लिखा । सम्राट **जयमय** (११३५-५७ ई.) के संरक्षण में सेउह द्वारा प्रारब्ध एवं **म्यू पनुलुह** द्वारा पूर्ण *भारतयुद्ध* ककवीन को व्रतयुद नाम से इसी युग में लिखा गया । इसी प्रकार **शिण्डोक** (९१९-४७ ई.) के शासनकाल में **योगीश्वर** द्वारा प्रणीत *रामायण ककवीन* को **यशादिपुर प्रथम** द्वारा इसी युग में *सीरतकाण्ड* नाम से लिखा गया । अन्य अनेक प्राचीन ककवीन इसी प्रकार नव्य जावी भाषा में पुनः लिखे गये ।

इस प्रकार, उपर्युक्त इसी एक सहस्राब्दी (सम्राट शिण्डोक के राज्यकाल के १९वीं शती के अन्तिम चरण तक) में भारतमूलक पुष्कल साहित्य जावा तथा बाली

में लिखा गया। इस साहित्य में धर्म और *नीतिशास्त्र* (उशना बालीं, जतूर योग, नीतिशास्त्र कुटारमानव आदि) इतिहास और मिथक (पररतों, बाबद नागरकृतागम आदि) अभिज्ञात काव्यवाङ्मय[१] तथा विज्ञान, कला, विधि, भैषज्य, तंत्रमंत्र, लोक, परम्परा तथा लोकशिल्प सम्बन्धी हजारों उत्कृष्ट ग्रन्थ सम्मिहित हैं जिनसे इन द्वीपों के साहित्य के परिवेश तथा गुणवत्ता का सहज आकलन किया जा सकता है।

१. योगीश्वर प्रणीत रामायण, म्यू तन्तुलर-प्रणीत सुतसोम एवं अर्जुनविजय, कण्वप्रणीत अर्जनविवाह, त्रिगुणप्रणीत कृष्णायन, मोणगुणप्रणीत सुमनसान्तक, म्यू धर्मज प्रणीत स्मरदहन, म्यू तदकुंप प्रणीत लुब्धक एवं चकवाकदूत, म्यू पनुलुहु-प्रणीत घटोत्कचाश्रय तथा हरिवंश, म्यू सोडाह-प्रणीत भारतयुद्ध ककविन।

सुवर्णद्वीपीय रामकथा का मूलस्रोत : रामायणककविन

यद्यपि **डा. उलेन बेक** महोदय जावी काव्यापम्परा का प्राचीन तम् ककविन् (काव्य) ८५६ ई. में प्रणीत एक कृति को मानते हैं। यह लघु-कलेवर कृति धर्मोपदेश का प्रकाशन करती है। परन्तु प्राय: समस्त पाश्चात्य एवं पौरस्त्य समीक्षक महाकवि **योगीश्वर** प्रणीत *रामायणककविन्* को ही कविभाषा की प्रथम एवं प्रास्थानिक काव्यकृति स्वीकार करते हैं।

बृहत्तरभारत के समस्त उपनिवेशों मे प्राय: रामकथा ही वहां की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं की आधारपीठ रही है। सिंहसद्वीप की **रामकेत्ति** (रामकीर्ति), थाईदेश की **रामकियेन,** लाओस की **फॉ लॉक फॉ लाभ** (प्रिय लक्ष्मण प्रिय राम) तथा मलेशिया की **हिकायत महाराजा राम** की ही तरह जावा की रामकथा *रामायणककविन्* भी सम्पूर्ण सुवर्णद्वीप की साहित्यिक सांस्कृतिक, धार्मिक, एवं आचरणसंहिता सम्बन्धी स्थापनाओं की आधारशिला रही है।

योगीश्वर प्रणीत *रामायण ककवीन* जावी रामकथा का गौरव-बिन्दु जिसे हम उसकी उद्गमभूमि भारत (वाल्मीकि रामायण, भट्टिकाव्य, रघुवंश) थाईलैण्ड (राम-कियन) तथा लाओस (फॉ-लॉक फॉ-लाभ अर्थात् प्रिय लक्ष्मण प्रिय राम) आदि की परम्परा का एक महनीय संघटक स्वीकार कर सकते हैं। छब्बीस सर्गों तथा २७७८ संस्कृत छन्दों में लिखा गया प्राचीन जावी भाषा (कवि) का यह महान ग्रन्थ कलेवर एवं काव्यसौन्दर्य –दोनों ही दृष्टियों से समूचे जावी साहित्य का समेरु माना जाता है। इसकी मूलकथा तो निश्चित रूप से **वाल्मीकि** एवं **भट्टि** का अनुसरण करती

है । कहीं-कहीं यह अनुसरण 'छायानुवाद' के स्तर तक भी जा पहुंचा ।[१] परन्तु इस ककवीन का सारा सौन्दर्य जावा-द्वीप की उन सामाजिक, सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक प्रवृत्तियों में केन्द्रित है । जो जावा रामकथा के माध्यम से प्रकाशित हुई है । जावा का चराचर वातावरण, लोकपरम्परा (पाञ्जी प्रेमाख्यान), खान लोकपरम्परा (पाञ्जो प्रेमाख्यान्, खान-पान (भरत द्वार अयोध्या में वानरसेना की पहुनाई) तथा भौगोलिक परिस्थितियां बड़ी सहजता के साथ *रामायण ककवीन* में रूपायित हुई है ।

पाण्डुलिपि एवं प्रकाशन

जावा तथा बाली के साहित्य में सर्वाधिक पाण्डुलिपियां *रामायण ककवीन* की है । इसका मूल कारण जावा-बाली में रामकथा की लोकप्रियता तथा इस ग्रन्थ का काव्यसौष्ठव ।[२] प्राचीन जावी-वाङ्मय के मर्मज्ञ आलोकचक **श्री सी. हुकाम** ने इसे जावा की कवीन-परम्परा का प्रास्थानिक ग्रन्थ स्वीकार किया है । (दि ओल्ड जावानीज रामायण, ऐन इक्जम्पनरी ककवीन् अम्स्टर्डम् १९५८ ई.) अपने इसी वैशिष्ट्य के कारण जावा में असंख्य बार इस ककवीन की प्रतियां तैयार की गयी । इस पौन: पुन्येन लेखन की प्रक्रिया में ही रामायण की जावी पाण्डुलिपियों में वह शुद्धि भी नहीं रह गयी जो बाली द्वीप में सुरक्षित रामायण की पाण्डुलिपियों में है । वाली पाण्डुलिपियों की भाषाशुद्धि के सन्दर्भ में **श्री रैफिल्स** का अभिमत पहले ही उद्धृत किया जा चुका है ।

---

१. भट्टिकाव्य का शरद् वर्णन:

न तज्जलं यत्र सुत्तारुपङ्कजं न पङ्कजं तद्यदलीनषट्पदम् ।
न षट्पदोऽसौ न जुगुञ्ज य कलं न गुञ्जितं तन्न जहार यन्मनः ॥
सक्वेह् निकन्तलग तन्हन तन्पतुञ्जुङ् तुञ्जुङन्य तन्हन कुरं पदेमेसि कुम्बङ ।
कुम्बङन्य कप्व मुनि तन्हन तन्पशब्द शब्दन्य कर्णसुक तन्हन तन मनोज्ञ ॥

– रामायण ककवीन् २.१९

२. In whole period of the history of javanese literature the Ramayan was considered a classic – डा. थ्योडोर पिगोड (लिटरेचर आवं जावा)

रामायण ककवीन की पाण्डुलिपियां मुख्यत: जावा, बाली तथा नीदरलैण्डस के लीडन यूनिवर्सिटी -ग्रन्थगारों तता विद्वज्जनों के व्यक्तिगत पुस्तक-संग्रहों में विद्यमान हैं। संस्कृत-ग्रन्थों के संकलन का जो श्रेय *इण्डिया आफिस लाइब्रेरी* (इग्लैंड) को है ठीक वंही श्रेय जावा तथा बाली ग्रन्थों के संकलन के लिये **लीडन विश्वविद्यालय लाइब्रेरी** (नीदरलैण्डस्) को है। इन द्वीपों पर प्राय: डेढ़ सौ वर्षों तक शासन करने के कारण, डच विद्वानों को प्राचीन जावी एवं बाली साहित्य के परिशीलन का अवसर प्राप्त हुआ। *रामायण ककवीन* के नवीनतम अंग्रेजी संस्करण के सम्पादक तथा अनूदक **डा. सुवितो सुन्तोसो** ने ग्रन्थ की भूमिका में **प्रो० एच० कनं**, जो लीडन वि० वि० में प्राच्यभाषाओं के यशस्वी प्रोफेसर थे, जो प्राचीन जावी भाषा एवं साहित्य के अध्ययन का जनक स्वीकार किया है। (पृ. ५ रामायण ककवीन, प्रथम खण्ड, इण्टरनेशनल अकादमी आव इण्डियन कल्चर, नई दिल्ली संस्करण)।

बाली परम्परा के *रामायण ककवीन* की पाण्डुलिपियों में एक और वैशिष्ट्य है। वह यह कि इन पाण्डुलिपियों में मूल जावा पंक्तियों के बीच-बीच में बालीभाषा अथवा मिश्रित जावी-बाली भाषा में टिप्पणी भी दी गयी है। वस्तुत: ऐतिहासिक स्रोतों से ज्ञात होता है कि ककवीन के एक एक छन्द इन व्याख्याओं के साथ ही गाये जाते थे। इस प्रकार मूल जावी के साथ जुड़ी बाली भाषा की पक्तियां श्लोक की भाषा-टीका जैसी है। जावी पाण्डुलिपियों में यह विशेषता नहीं है।

डा. थ्योहौर पिनाड ने लीटन वि. वि. लाइब्रेरी मे संग्रहीत निम्न पाण्डुलिपियों की सूचना प्रस्तुत की है।

(क) रामायण ककवीन (बाली परम्परा सम्पूर्ण) कोड संख्या २२०१, २२०२, ४४३६ एवं. ४४३८ (टीका सहित)

(ख) रामायण ककवीन (बाली-परम्परा, संग्रह एवं खण्डित अंश) कोड संख्या १८७८, २०५९, २२१७, २३०१, ३८७१, ४४३७, ५२६२, ५३८४।

(ग) रामायण ककवीन (बाली-परम्परा संग्रह एवं खण्डित अंश, टीका सहित) कोड. ४४४०, ४४४३, ४४४४, ५०९४ ।

(घ) रामायण ककवीन (जावी परम्परा रामकवि के रूप में प्रख्यात) कोड १७९०, एन. बी. एस् १२१ ।

बाली परम्परा की रामायण पाण्डुलिपियां द्वीप के एकमात्र राजकीय विश्वविद्यालय *यूनिवर्सिताम् उदयन* के लोत्तार (ताडपत्र) कक्ष में भी प्रभूत मात्रा में संकलित है । ऐसे ही संग्रह जकार्ता, योग्यकर्ता, सेमरांग, सुरावाया था अन्य केन्द्रों में भी है ।[१]

रामायण ककवीन का प्रथम प्रकाशन सन् १९०० ई.प्रो. एच. कर्न द्वारा किया गया मूलजावी (कवि) लिपि में । कालान्तर में **डा. कर्ण** एवं **जूईनवाल** ने समवेत रूप से ग्रन्थ का डच भाषान्तर भी प्रस्तुत किया ।[२] **डा. कर्न** का अनुवाद मात्र ६ सर्गों तक सीमित रहा । शेष सर्गों का अनुवाद **जुइनबाल** ने किया परन्तु उन अंशों को छोड़कर जिन्हें वे 'क्षेपक' (इन्टरपोलेशनस) की संज्ञा देते हैं । **एच. सी. हुकास** कुछ बिखरे अंशों का ही रूपान्तर किया । **डब्ल्यू ऐकेल, डा. पर्वतजरक** तथा **के. वुल्फ** ने भी अपने रामकथा परक शोधनिबन्धों में *रामायण ककवीन* के कुछ अंश रूपान्तरित किये गये हैं ।

रामायण ककवीन का अंग्रेजी भाषा में आद्यान्त रूपान्तर जावी भाषा के सहृदय विद्वान तथा आंग्लभाषा के उत्कृष्ट अधीती **डा. सुवितो सन्तोसो** ने सम्पन्न किया, जिसे तीन खण्डों *शतपिटक ग्रन्थमाला* (इण्डोएशियन लिटरेचर) के २५१वें

---

१. सविस्तर द्रष्टव्यः लिटरेटर आवॅ जावा प्रथम खण्ड पृ. १७७ इन पाण्डुलिपियों का अपेक्षित विवरण डा. सुवितो सन्तोषो ने अपने संस्करण की भूमिका में पृ. ६७८ पर प्रस्तुत किया है ।

२. द्रष्टव्य बी. के. आई. वाल्यूम्स ७३-९४ सन् १९१८-३६ ई. तक । १९१७ से २१ तक डा. कर्न ने तथा १९२२ से ३६ ई. तक जूइनवाल ने वह उच्च भाषान्तर सम्पन्न किया ।

पुष्प के रूप में १९८० ई. में प्रकाशित किया गया है ।[१] इस संस्करण में मूल जावी छन्दों को रोमन लिपि में प्रस्तुत किया गया है । एक विद्वान द्वारा किसी अन्य भाषा में सातत्येन किया जाने वाला यह प्रथम सांगोपांग अनुवाद है ।[२]

ग्रन्थ, ग्रन्थकार एवं ग्रन्थरचना:

रामायण ककवीन के रचनाकार एवं रचनाकाल के सन्दर्भ में विभिन्न विद्वानों की विभिन्न व्यक्तिगत धारणाएं पिछले प्राय: सौ वर्षों में यथावसर उत्पन्न एवं विकसित होती रही है । रामकथा के पाठकों को विज्ञप्ति के लिये उन समस्त धारणाओं का संकलन एवं समालोचन किया जा रहा है ।

१. जावा तथा बाली की स्थानीय परम्परा के अनुसार *रामायण ककवीन* की रचना **म्यू योगीश्वर** द्वारा मध्य जावा के मतराम शासक **बलितुंग** के शासनकाल (नवीं शती ई. का अन्तिमचरण एवं दसवीं का प्रथम चतुर्थांश) में की गयी ।[३]

२. फ्रांसीसी विद्वान् **जार्ज सिडो** ने बौद्ध-ग्रन्थ *सुमूतितंत्र* के सम्पादक तथा *संग ह्यागं कमहायानिकन्* के लेखक, *सम्भरसूर्यविरण* एवं *रामायण ककवीन* के लेखक को सम्राट् **शिण्डोके** के शासनकाल (९१९-९४७ ई.) माना गया, जो कि बलितुंग की परम्परा में पांचवां नरेश था ।[४]

३. जावी इतिहास ग्रन्थ *वावद* में **म्यू योगीश्वर** प्रणीत *रामायण ककवीन* की रचनातिथि शकाब्द १०१६ (= १०९४ ई.) दी गयी है ।[५]

---

१. इन्स्टीट्यूट आव साउदईस्ट ऐशियन स्टडीज, सिंगापुर एवं इण्टरनेशनल अकादमी आफ इण्डियन कल्चर, नई दिल्ली के संयुक्त तत्त्वावधान में प्रकाशित ।

२. रामायण ककवीन के श्लोकों का नागरी लिप्यन्तरण तथा हिन्दी अनुवाद प्रथम बार निबन्ध लेखक स्वयं कर रहा है ।

३. (द्रष्टव्य डा. सुवितो सन्तोसो के रामा. कक. संस्करण की भूमिका पृ.१७ ।

४. द्रष्टव्य डा. वैजनाथ पुरी कृत सुदूरपूर्व में भारतीय संस्कृत और उसका इतिहास पृ. ३६५ इतिहास पृ. ३६५

५. द्रष्टव्य डा. रमेशचन्द्र मजूमदार कृत सुवर्णद्वीप, द्वितीय खण्ड पृ. ६५

४. प्रसिद्ध जावी विद्वान **डॉ. पर्वतजरक** *रामायण ककवीन* को निश्चित रूप से मध्य जावा के मतराम शासन की उपलब्धि मानते हैं। इस शासन की अवधि **सन्नाह** (८वीं शती का पूर्वार्ध) से **ववा** (९२४-२७ ई.) तक व्याप्त है। **बवा** के उत्तराधिकारी **शिण्डोक** ने पूर्वी जावा का मतराम -साम्राज्य संस्थापित किया।[१]

५. **डॉ. ब्राण्डेस** एवं **डॉ. स्टुटरहीम** भी **डॉ. कर्न** की धारणा के विरोध में *रामायण ककवीन* को प्रभूत प्राचीन (इट बिलांग्स टू ए मच अर्लियर पीरियड) कृति स्वीकार करते है।[२]

६. **डॉ. थ्योडोर पिगाड** ने, आठवीं, नवी तथा दसवीं शती के मध्यवजावी राजकीय व्यवहारों की चरितार्थता देखते हुए, *रामायण ककवीन* को मतराम शासकों के ही युग की कृति स्वीकार की है।[३]

७. *रामायण ककवीन* के प्रथम सम्पादक एवं प्रकाशक डच विद्वान **डा. एच. कर्न** ने इस १३वी शती के प्रारम्भिक चरण की कृति स्वीकार किया है।[४]

८. पूर्वी जावायुग (अर्थात् १०वीं शती के प्रारम्भ से) के प्राचीन जावी ककवीनों में लंङ्गे लगेड सरीखे शब्दों का तथा ग्रन्थारम्भ में मंगलाचरण का प्रचुर प्रयोग हुआ है। परन्तु *रामायण ककवीन* में इन शब्दों तथा मंगल का सर्वथा अभाव देखते हुए भी **जोएटमुल्डर** ने भी (कलगवन पृ. २३१-३२) रामायण को पूर्वजावी साम्राज्य से पूर्व की कृति मानने का संकेत किया है।

---

१. द्रष्टव्य वही पृ.६५

२. द्रष्टव्य वही, पृ.६५

३. द्रष्टव्यः दि ओल्डेस्ट ककवीन ह्विच हैज कम डाउन टु अस इज दि रामायण, ह्विच वज प्राबेवली रीटेन इन ति पीरियड ऑव दि सुजरेन्टी आव सेण्ट्रल जावा, नीज़ किंग्स रिडाइडिंग इन दि ओल्ट डिस्ट्रिक्ट आव मतराम। इन वाकेबुलरी दि रामायन रिजेम्बुल्स सम आव दि ओल्डेस्ट रायल चार्टस् ह्विच वेयर इशूज इन दि एट्थ नाइन्थ एण्ड टेन्थ सेञ्चुरीज। – लिटरेटर आव जावा, प्रथम खण्ड पृ. १७६

४. द्रष्टव्य डा. मजूमदार कृत सुवर्णद्वीप, द्वितीय खण्ड पृ.६५

९. और अन्ततः संस्करण की भूमिका में डा. सन्तोसो ने पारम्परिक मत (बलितुंग-युगीन कृति) प्रस्तुत करते अपना अभिमत इन शब्दों में प्रकट किया है दि रामायण ककवीन इज ए प्रोडक्ट आव काण्टीन्यूअस रिशेपिंग एण्ड रिमाडेलिंग (भूमिका पृ. १७)।

इन मतों की समीक्षा करने से पूर्व में अपने व्यक्तिगत अध्यवसाय एवं चिन्तंन की ओर विद्वज्जनों का ध्यान आकृष्ट करना चाहूंगा और वह है *रामायण ककवीन* की पूर्ववर्ती-परवर्ती सीमा।

यद्यपि **डा. कर्न** का मत है कि रामायण का कर्त संस्कृतज्ञ नहीं था। अपने ग्रन्थ का प्रतिपाद्य उसे किन्हीं ओर स्रोतों से प्राप्त हुआ। परन्तु **डा. पर्वतजरक** ने **कर्न** के मत का खण्डन करते हुए कहा कि **ककवीनकार** *वाल्मीकिरामायण* से सुपरिचित था। (टी. बी. जी., १९३२ ई. पृ. ११३) **श्री एम. घोष**, ने ककवीनकार को *भट्टिकाव्य* से परिचित बताते हुए उसकी कृति को भट्टिकाव्य का आंशिक अनुवाद तथा आंशिक आहरण (पार्शियली ए ट्रांसलेशन एण्ड पार्शियली एन अडाप्टेशन) बताया है।[१] परन्तु ककवीन के गहन अध्ययन से इन विद्वानों के मत एकांग तथा अपूर्ण प्रतीत होते हैं।

वस्तुतः **ककवीनकार** वाल्मीकि एवं भट्टि-दोनों से भलीभांति परिचित था। और वह निश्चय ही संस्कृत भाषा गहन अध्येता था। *रामायण ककवीन* का प्रारम्भ (दशरथ वर्णन) ही, किसी भी संस्कृत काव्यमर्मज्ञ को यह विश्वास कराने में समर्थ है कि कवि 'भट्टि काव्य' को 'निदर्शन' मानकर ग्रन्थ रचना कर रहा है। ग्रन्थ के द्वितीय सर्ग में, राम-लक्ष्मण की विश्वामित्र के साथ की गई यात्रा के सन्दर्भ में ककवीनकार, प्रकृतिवर्णन के संदर्भ में पूर्णतया भट्टि पर आश्रित प्रतीत होता है। इसका एक विलक्षण प्रमाण मुझे ककवीन के निम्नलिखित वसन्त तिलक छन्द में देखने को मिला।[२]

---

१. द्रष्टव्य जर्नल आव दि ग्रेटर इण्डिया सोसाइटी, खण्ड-३, पृ. ११३।

२. ननं तज्जलं यन्न सुचारुपङ्कजं न पङ्जं तद्यदलीनषट्पदम्।
न षट् पवोऽसौ न जुगुञ्ज यः कलं न गुञ्जितं तन्न जहार यन्मनः॥ भट्टि.

सक्वेह् निकन् तलग तन्हन तन् पतुञ्जुङ
तुञ्जुङ्न्य तन्हन कुरङ्ग पदमेसि कुम्बङ।

कुम्बङ् न्य कप्व मुनि तन्हन तन् पशब्द
शब्दन्य कणेसुक तन्हनतन् मनोज्ञ ॥२.१९।

रामायण ककवीन का यह शरद् वर्णन परक छन्द *भट्टिकाव्य* के ही **न तज्जलं यन्न सुचारुपंकजम्** आदि का अविकल भाषान्तर है। कवि ने न केवल **भट्टि** के श्लोक का अभिप्राय, बल्कि उसकी आंलकारिक सुन्दरता का भा अक्षत रखा है। अत: **म्यू योगीश्वर** का भट्टि-अनुवर्तितत्वं सन्देह से परे है। यदि ककवीनकार संस्कृत का प्रकाण्ड पण्डित न होता तो छन्द, अलंकार एवं अभिप्राय का इतना विश्वनीय एवं नाटकीय रूपांकन अपनी कविता में कर ही न पाता। अत: इस श्लोक के आधार पर *रामायण ककवीन* के रचनाकाल की पूर्वसीमा, भट्टिकाव्य के अनन्तर ही स्वीकार की जानी चाहिये। **भट्टि** ने अपनी कृति **वलभी नरेश श्रीधरसेन** के शासनकाल में लिखी। यदि *भट्टिकाव्य* को भारत से जावा आने एवं सुप्रचलित होने में पचास वर्ष का भी समय लगा हो तो निश्चय ही ककवीन की पूर्वसीमा ईसा की नवीं शती सिद्ध होती है।

परन्तु **म्यू योगीश्वर** को मात्र **भट्टि** से ही परिचित मानना उचित नहीं है। वानरवाहिनी[१] तथा राक्षसवाहिनी[२] के वीरों की नामगणना तथा दैनिक युद्ध का क्रम इस तथ्य का प्रवल प्रमाण है कि कवि ने *वाल्मीकि रामायण* को अच्छी तरह आत्मसात् किया था। एक ओर स्पष्ट संकेत मिलता है वह यह ककवीनकार को सम्भवत: *वाल्मीकिरामायण* का मूलरूप (बालकाण्ड से युद्धकाण्ड तक) ही प्राप्त

---

१. गज, गवय, गवाक्ष कुमुव, सुरभि, सुषेण, अर्क, अनंग, जम्भ, बृहद्बल, वरीमुख, प्रजंध, गन्धमादन, शतबलि, द्विवद, मैन्द, नील, नल, अंगद, सुग्रीव, आदि।

२. वूमाक्ष, विद्युज्जिह्व, शुक, सारण, कुम्भ, निकुम्भ, अतिकाय, अकम्पन, नरान्तक, महोदर, प्रहस्त, मेघनाद, कुम्भकर्ण आदि।

हुआ था, क्यो कि अपने ग्रन्थ को समाप्ति में योगीश्वर राम के राज्यभिषेक से ही करता है । क्षेपकभूत तथा रामकथा की मूल धारा से सर्वथा विच्छिन्न 'उत्तर काण्ड' के अन्तर्विरोधी वृत्तों से **म्यू योगीश्वर** का परिचय नहीं है । इतना ही नहीं, कवि कालिदासीय कविता का भी मर्मज्ञ प्रतीत होता है ।

रामायण ककवीन की परवर्तीत सीमा क्या है ? **डॉ. सुवितो सन्तोसो** ने *नीतिशास्त्र*[१], **नागरकृतागम**[२], **पाञ्जोप्रेमाख्यान्**[३], **कुटारमानव** एवं **कृतवास** आदि ग्रन्थों के उद्धरणों की रामायण ककवीन के समानाभिप्रायी श्लोकों के साथ अत्यन्त रोचक समीक्षा की है जो स्वयं में पर्याप्त है । मैं केवल इतना कहना चाहता हूं इस संदर्भ में कि इन ग्रन्थों में एकमात्र *कुटार-मानव* ही ऐसा है जिसका ककवीन में 'नाम्ना' उल्लेख हुआ है । अन्य ग्रन्थों के प्रतिपाद्य साम्य की सम्भावना भर की जा सकती है । जैसा कि **डॉ. संतोसो** ने प्रयास किया है ।

लंकाविजय के अनन्तर पति द्वारा तिरस्कृत सीता, अपने अपमान दैन्य से सन्तप्त विभीषण की पुत्री त्रिजटा को सान्त्वना देती हुई कहती है— 'विभीषण को यह समाचार बता देना उचित है क्योंकि वह *कुटारमानव* की देशनाओं के मर्मज्ञ हैं ।'

कुटारमानव एक विधिशास्त्रीय ग्रन्थ है । भारत में इस नाम का कोई ग्रन्थ नहीं है । परन्तु इस ग्रन्थ की प्रकृति के सैकड़ों स्मृति ग्रन्थ एवं सूत्रग्रन्थ (मानव धर्मसूत्र आपस्तम्ब धर्मसूत्र आदि) विद्यमान हैं । सम्भव है *कुटारमानव* की सर्जना उन्हीं भारतीय विधिशास्त्रीय ग्रन्थों के आधार पर हुई हो । *कुटारमानव* के कर्तृत्व का श्रेय

---

१. नीतिशास्त्र ३.२ तथा १.१० के प्रतिपाद्य का साम्य रामायण के २४.७१, ७२ एवं ३.७७ संख्यक पद्य से है ।

२. नागर. ६९.२, तथा ७८.२ का प्रतिपाद्य-साम्य -रामायण के ३.७७ एवं. ३.७० संख्यक पद्य से ।

३. रामायण कक. के २५वें सर्ग के तीसरे श्लोक में 'प्राक्री-कथा' का उल्लेख ।

सम्राट **राजसनगर** (हयमवुरुक १३५०-८९) के प्रख्यात महामात्य **गजहमद**[१] को दिया जाता है जिसकी मृत्यु १३६४ ई. में हुई।

रामायण ककवीन में नाम्ना उल्लिखित होने के कारण *कुटारमानव* (१४वीं शती का पूर्वार्ध) को हम उसकी परवर्ती सीमा स्वीकार कर सकते हैं। यदि **डॉ. संतोसो** द्वारा प्रदर्शित *नागरकृतागम* का भी प्रभाव ककवीन के कुछ अंशों पर मान लिया जाये तो भी परवर्ती सीमा यही होगी। क्योंकि राजनगर शासनकाल में ही १३६५ ई. में प्रपञ्च ने इस ग्रन्थ की रचना की थी।

इस प्रकार **डा. संतोसो** के ही निर्णय **बलितुगं** के शासन काल से लेकर राजस-नगर के शासनकाल तक को मैं और सुनिश्चित प्रमाणित शब्दों में कहना चाहूंगा कि *रामायण ककवीन* की पूर्वसीमा *भट्टिकाव्य* (का जावा में आगमन काल तथा परवर्ती सीमा *कुटारमानव* (१३६४ ई. गजहमद की मृत्युतिथि) है इस तरह नवीं से १४वीं शती के मध्यवर्ती ५०० वर्षों में इस महान ककवीन का अंकुरण पल्लवन तथा प्रतिफलन सम्पन हुआ।

उपर्युक्त विवरण में मात्र **डा. कर्न** को छोड़कर शेष समस्त विद्वानों ने *रामायण ककवीन* के लेखक को या तो **बलितुंग** एवं **शिण्डोक** का समसामयिक माना है या फिर उन्हीं के आस पास। **मव्यजावी-शासन** में रामायण की रचना का सीधा अर्थ है—सम्राट संञ्जय से **शिण्डोक** तक के शासन के २०० वर्ष। **शिण्डोक** (९२९-४७ ई.) ही पूर्वी जावा के मतराम साम्राज्य का भी संस्थापक है।

इस प्रकार रामायण की रचना निश्चित रूप से **बलितुंग** अथवा उसके चुतुर्थ उत्तराधिकारी **प्रतापी शिण्डोक** के शासनकाल में या फिर उन्हीं २०० वर्षों में कमी हुई होगी। परन्तु उसका संस्करण-परिवर्धन **मजपहित साम्राज्य** (१२९४-१४७८ई.) के मध्यकाल अर्थात् **सम्राट राजसनगर** के शासनकाल तक होता रहा। *पाञ्जी-प्रेमाख्यान्* जिसका मूल नायक कडिरी नरेश **कामेश्वर प्रथम** (११०६-३५

---

१. द्रष्टव्यः सुवर्णद्वीप - डॉ. आर.सी. मजूमदार पृ-. ३३८। 'गाजहमद' एसल् सूर्यादिनाथ, इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका १५वां संस्करण १९७४ ई. पृ. ८२६।

ई.) माना जाता है । १२वीं शती के पूर्वार्ध का साहित्य है इस प्रकार रामायण में *पाञ्जी कथा* (पुत्री मपाञ्जि) का उल्लेख भी उसे ११३५ ई. के पूर्व की ही कृति सिद्ध करता है । पाञ्जी के सन्दर्भ में कुछ नये तथ्य प्रस्तुत करना चाहूंगा ।

म्यू धर्मज अपने *स्मरणदहन ककवीन* में **सम्राट कामेश्वर** (स्मर) तथा उसकी राजधानी दह अथवा कडिरी (दहन का स्मरण) मुद्रालंकार के माध्यम से किया है । कामेश्वर की पत्नी श्री किरण जंगल राज्य की अद्वितीय सुन्दरी थी । **कामेश्वर** तथा **श्री किरण** को जावी परम्परा में काम एवं रति का अवतार माना गया है । इन्हीं दोनों की प्रणयगाथा जावा के लोक मानस में *पाञ्जी प्रेमाख्यान* के रूप में प्रतिष्ठित हुई । थाई एवं कम्बुज तक पाञ्जीकथाओं की कीर्ति व्याप्त हो गयी और थाई सम्राट ने तो १९वीं शती में पाञ्जी कथानक पर एक स्वतंत्र नाटक भी लिखा ।

डा. संतोसो ने *पाञ्जीकथा* के सन्दर्भ में **श्री सी.सी. वर्ग** तथा **डा. पवर्तजरक** में मतों का हवाला दिया है जो उन्हें क्रमश: १२७७-१४०० ई. के बीच तथा १४वीं शती में रखते हैं । **वर्ग** *पाञ्जीकथा* में उल्लिखित इनु कोरिपन अर्थात् पाञ्जी का समीकरण **मजपहित सम्राट हयम् वुरुक** (१३५०-८९ ई.) के साथ करते हैं । इससे **डॉ. संतोसो** का निष्कर्ष यह है कि *रामायण ककवीन* का परिवर्तन परिवर्धन १४वीं शती के अन्त तक होता रहा ।

परन्तु **वर्ग** या **परवर्तजरक** की धारणा के आधार पर *पाञ्जीकथा* का तिथि निर्णय और फिर उसके भी आधार पर *रामायण ककवीन* को १४वीं शती[१] तक 'घसीटना' एक पक्षीय प्रयास मात्र है । मैंने अभी बाली के मचपत छन्दों में लिखे गये एक पाञ्जी प्रेमाख्यान मेघुरितान पांकग ररास का अध्ययन किया जिसमें कहुपिपन (जंगल राज्य की राजधानी जिसे सिंहसारि कहा गया कलान्तर में) के राजकुमार पाञ्जी रदेन मंत्री तथा दह (पजलु राज्य की राजधानी दह दहन अथवा

---

१. यद्यपि डा. कर्न जुइनबॉल, सी.सी. बगर्म । एवं डा. पर्वतजरक ने मूल रामायण ककवीन में मिलावट (इण्डरपोलेशन) मानी है । परन्त श्री उकास इसके सर्वथा विपरीत हैं । वह संम्पूर्ण ग्रन्थ को एक ही सातत्य में लिखी गयी मौलिक कृति मानते हैं ।

कडीरी) की राजकुमारी रदेन गलुह की प्रेमकथा वर्णित है । कुमार रदेन मंत्री एक तूफान में उड़कर दहदहु के अन्तपुर उद्यान में जा गिरता है । स्वयं को राजकुमार न बताकर पाकंग ररास नामक एक अन्यज बताता है । और इसी कारण राजकन्या से प्रेम करने के दण्ड-स्वरूप राजाज्ञा-वश महामान्य द्वारा मारा भी जाता है । परन्तु शिव की कृपा से पुन: उसे प्राण दान मिलता है । और अन्तत: ज्ञात होता है कि रदेन गलुह उसकी अपनी ही बहन है । दोनों ही प्रेमियों का विवाह सम्पन्न हो जाता है ।

ऐतिहासिक प्रमाणों से ज्ञात होता है कि मजपहित नगर एवं साम्राज्य के संस्थापक **कृतराजस जयवर्धन** (१२९४-१३०९ ई.) की दो पत्नियां थीं राजमहिषी गायत्री से उसको दो पुत्रियां और मलय राजकन्या से जयनगर नामक पुत्र प्राप्त हुआ । पिता की मृत्यु के बाद यही जयनगर **श्री सुन्दर पाण्डेदेवाधीश्वर विक्रमोत्तुंगदेव** के नाम से मजपहित साम्राज्य का शासक बना । अपनी दोनों सौतेली बहनों को सम्राट ने 'कहुलिपन के राजकुमारी तथा दह की राजकुमारी' सरीखी उपाधियां दीं । अर्धपुष्ट प्रमाणों से ज्ञात होता है कि सम्राट जयनगर अपनी इसी सोतेली बहन (दह की राजकुमारी) से विवाह करना चाहता था (ताकि कोई अन्य सामन्त उससे विवाह करके सिंहासन का दावेदार न बन सके) ।

परन्तु सम्राट के अधर्म प्रस्ताव का राजसभा में घोर विरोध हुआ दह की राजकुमारी सम्राट की सगी बहन थी । इस घटना के बाद ही राजवैद्य तञ्ज ने सम्राट के फोड़े की शल्पक्रिया करते समय, उसका वध कर डाला और स्वयं भी महामात्य गजमद के हाथों मारा गया ।[१] ये सारी घटनाएं जावी इतिहास द्वारा प्रमाणित हैं ।

अब इस इतिहास के परिप्रेक्ष्य में *गेगुरितान पाकंग ररास* को देखें । निश्चित रूप से यह पाञ्जी प्रेमाख्यान सम्राट जयनगर और उसकी सौतेली बहन के

१. इन सन्दर्भ में अनेक किंवदन्तियां प्रचलित हैं । कहा जाता है कि अपनी पत्नी के साथ अभद्र आचरण करने के कारण राजवैद्य ने अवसर पाकर सम्राट का वध कर डाला । बाली की परम्परा के अनुसार सम्राट के तञ्च नहीं बल्कि महामान्य गजहमद की पत्नी के साथ ऐसा आचरण किया था। उसकी मृत्यु के बाद उसकी सौतेली बहन त्रिभवनोत्तुंगदेवी विष्णु वंधिनी (१३२८-५० ई.) नाम से सिंहासन पर बैठी ।

प्रेम-सम्बन्ध पर आधारित है । दह के महामात्य द्वारा अन्त्यज पावंग ररास का वध निश्चय ही सगी बहन से विवाहेच्छुक अतएव संस्कारहीन अन्त्यज सरीखे **सम्राट जयनगर** के तञ्च द्वारा किये गये वध का रूपक मात्र है । सम्राट जो स्वयं नहीं कर सका अपने जीवन गेगूरितान लेखक ने उसे काव्य में पूर्ण करा दिया है कुछ देवी चमत्कारों का कथा में प्रवेश दिखाकर । यह मेरा अपना अन्वेषण है । इतिहास और कल्पना के बीच में 'पाकंग ररास' की मृत्यु भेदक रेखा है ।

अब प्रश्न यह है कि पाञ्जीनायक **सम्राट कामेश्वर** (११०६-३५ ई.) को माने (जिसे स्मरदहनकार में अमर रत्व दिया है) या फिर बाली द्वीप के गेगुरितान पाकंग ररास के संकेतित नायक **सम्राट जयनगर** (१३०९-२८ ई.) को या फिर वर्गाभिमत एवं **डा. संतोसो** दृढ़तापूर्वक स्वीकृत **सम्राट राजसनगर हयम् वुरुक** (१३५०-८९ई.) को ? इसलिये मेरा अनुरोध यह है कि विभिन्न पाञ्जी ग्रन्थों के नायकों को महत्व न देकर पाञ्जी शब्द से मूल पांञ्जी नायक कामेश्वर को ही ग्रहण करना चाहिये । अत: रामायण पांञ्जी का उल्लेख उसे हयमवुरुक तक नहीं कामेश्वर तक ही अर्वाचीन सिद्ध करता है । रही बात *कुटारमानव* के नाम्ना उल्लेख की तो उस सन्दर्भ में उतना ही कहना पर्याप्त है कि महामात्यगजहमद द्वारा उसका लेखन एक सम्भावना पात्र है उसका कोई ठोस साक्ष्य नहीं उपलब्ध होता । नीति शास्त्र एवं नागर कृतागम का भावसाम्य भी निश्चित रूप से इसी तथ्य की पुष्टि करता है कि ये अंश *रामायण ककवीन* के प्रभाव में लिखे गये हैं । न कि ककवीन के वे अंश इन ग्रन्थों के प्रवाह में !

इस प्रकार *रामायण ककवीन* की विश्वसनीय तिथि **सम्राट बलितुंग** का शासन काल तथा उसके विकास की तिथि ११वीं शती का पूर्वार्ध सिद्ध होती है ।

सन्दर्भ के प्रारम्भ में बताया जा चुका है कि *रामायण ककवीन* के लेखन का श्रेय जावी-इतिहास ने **म्यू योगीश्वर** को दिया है । **डा. संतोसो** ने इस सन्दर्भ में भी प्रभूत सामग्री एकत्र की है और अन्तत: यह निष्कर्ष निकालने का यत्न किया है । योगेश्वर कोई व्यक्तिगत नाम नहीं है । बल्कि बाल्मीकि का पर्याय है । उसके

अनुसार यह शब्द मुस्लिम सूफी संत सुनान काली जग (आदिबली) को संकेतित करता है जो कि जावा के मुस्लिम परम्परा के अनुसार रामायण का रचनाकार है। **श्री हुकास** भी योगीश्वर को व्यक्तिवाचक संज्ञा नहीं मानते है। परन्तु **डा. पर्वतजरक** इस धारणा के घोर विरोधी हैं और वह योगीश्वर को भी रामायण का लेखक मानते हैं जो किसी भी उपाधि नहीं बल्कि स्वयं एक व्यक्तिविशेष था।

यद्यपि योगीश्वर विषयक दोनों ही पक्ष **डा. संतोसो** ने स्वयं प्रस्तुत कर दिये हैं। कुछ अवान्तर तर्क वितर्क की आवश्यकता नहीं। परन्त यह रहस्य समझ में नहीं आता कि बाल्मीकि को योगीश्वर मानना तथा अपने मत के समर्थन में मुस्लिम सूफी संत **आदिबलि** (योगीश्वर) को ले आना और फिर एक ऐसे आकासकुसुम व्यक्तित्व वाले योगीश्वर को ककवीन का लेखक मानना कहां तक तर्क सम्भव है? बाल्मीकि संस्कृत रामायण के लेखक हैं न कि रामायण ककवीन के! रामायण-ककवीन का तो कोई न कोई स्थानीय लेखक होगा ही! और यदि यह लेखक जावी बाबत तथा बाली परम्परा से समर्थित **म्यू योगीश्वर** है, तो इसमें अविश्वास करने की गुंजाइश ही कहां है? यदि जावा के मुस्लिम परंपरा (जो निश्चय ही पंद्रहवीं शती के बाद का है। उसके पूर्व तो जावा विशुद्ध हिन्दु राज्य था) आदिबलि सूनान कालिजग जैसे सूफी संत को रामायण रचना का श्रेय दे सकते हैं तो मुस्लिम पूर्व बाली एवं जावा के ठोस हिन्दू परम्पराओं की उपेक्षा का क्या औचित्य है जो म्यू योगीश्वर को रामायण ककवीन का सर्जक मानती है? और फिर ककवीन की रचना से पांच सौ वर्ष बाद जावा में आने वाला कोई मुस्लिम संत उसका लेखक होगा?

कथा विन्यास एवं कलेवर : रामायण ककवीन कलेवर तथा साहित्य सौन्दर्य दोनों ही दृष्टियों से जावा की एक महनीय कृति है। इसमें कुछ २६ सर्ग तथा २७७८ छन्द है। आर्या, मालिनी, वसन्ततिलका, वंशस्थ, पृथ्वी तथा त्रग्धरा, शार्दूलविक्रीडित के साथ ही साथ कवी ने २६वें सर्ग में 'दण्डक' जैसे विशिष्ट छन्द का भी प्रयोग किया है। जिससे उसका छन्द शास्त्रीय प्रागल्भ्य मुखर हो उठता है।

ग्रन्थ का सर्गानुसारी प्रतिपाद्य क्रम इस प्रकार है —

१. दशरथ प्रतापवर्णन, पुत्रोष्टियज्ञ, रामजन्म, विश्वामित्र द्वारा राम-लक्षमण-याचना ।

२. राम-लक्ष्मण द्वारा विश्वामित्र की यज्ञ रक्षा, ताटकावध, मारीच-उत्सादन, मिथिला में धनुर्भंग तथा परशुराम-पराभव ।

३. राज्याभिषेक, कैकयी द्वारा व्याघात, राम वनगमन, दशरथ-मरण, भरत द्वारा रामानुनय, राम द्वारा भरत को सान्त्वना एवं राजधर्मोपदेश ।

४. दण्डकप्रवेश, विराधवध, सुतीक्ष्णाश्रम-निवास, शूर्पणखा का लक्ष्मण से प्रेम एवं वैरुप्य, खरदूषण-त्रिशिरा-वध,

५. शूर्पणखा द्वारा रावण प्रबोध, मारीच की सहायता से रावण द्वारा सीता हरण ।

६. रावण द्वारा जटायु वध, राम-लक्ष्मण सीतान्वेषण, जटायु से सीताहरण-वृत्त का ज्ञान, दीर्धबाहु (योजनाबाहु) वध,शवरी से भेंट, राम सुग्रीव मैत्री, सप्ततालाच्छेदन, वालिवध, वर्षागमन ।

७. सीतावियोग में राम का सन्ताप, वानरों का सीतान्वेषणाभियान, स्वयंप्रभा का छल, सम्पाति द्वारा दिशा निर्देश ।

८. हनूमान का आकाशमार्ग से लंका गमन, अशोकवन में सीता दर्शने, रावण द्वारा सीता का उत्पीड़न, हनूमान सीता वार्तालाप, सीता से पत्र एवं चूड़ामणि की प्राप्ति, अशोक वन-विध्वंस ।

९. अक्ष सहित अनेक राक्षससैनिकों का वध, इन्द्रजीत द्वारा हनुमान का बन्धन, रावण द्वारा मृत्युदण्ड, विभीषण द्वारा दूत के अवध्यत्व की मंत्रणा ।

१०. हनुमान रावण संवाद, हनुमान के औद्धत्य से क्रुद्ध रावण का पूंछ जला देने का आदेश ।

११. लंकादहन, सीता से विदा, राम को पत्र एवं चूड़ामणि समर्पण, राम की प्रणयवेदना, वानर सैन्य का प्रस्थान ।

१२. लंका में पोर-जीवन-चर्या, उन्मुक्त कामकेलियों का वर्णन, राक्षस-प्रमुखों की मंत्रणा ।

१३. रावण द्वारा परामर्श, प्रहस्त द्वारा युद्ध की मंत्रणा, विभीषण द्वारा न्याय, षड्गुण तथा जनानुराग द्वारा शान्तिस्थापना की मंत्रणा ।

१४. सुमाली एवं कुम्भकर्ण द्वारा विभीषण का समर्थन, रावण द्वारा विभीषण का अपमान ।

१५. विभीषण की राम के प्रति शरणागति, सागर के प्रति राम का रोष, वरुण द्वारा सेतुनिर्माण की मंत्रणा ।

१६. नाल (नल) द्वारा सेतु-निर्माण, वानरसेना का सागर-अतिक्रमण, सुवेल-पर्वत विहार ।

१७. रावण द्वारा राम-लक्ष्मण के मायावी कटे शीश का प्रदर्शन, सीता का चितारोहण, त्रिजटा का अपने पिता विभीषण के पास गमन, सीता को सत्यनिवेदन ।

१८. रावण द्वारा शुक सारण सम्प्रेषण, शुक-सारण द्वारा रावण को सन्धि की मंत्रणा, अंगद-दौत्य ।

१९. युद्ध के लिये उभयपक्ष की तैयारी, युद्धारम्भ, युद्धवर्णन ।

२०. राक्षससेना का विनाश, इन्द्रजीत का अलक्ष्य होकर रात्रि में कूटयुद्ध, राम लक्ष्मण का नागपाश-बन्धन, विभीषण द्वारा इन्द्रजीत का उपद्रवण, राक्षस पक्ष का विजय महोत्सव ।

२१. नागपाश में जकड़े राम-लक्ष्मण का सीता को प्रदर्शन, सीता का विलाप एवं मूर्च्छा, विभीषण द्वारा त्रिजटाप्रबोध, दवा तथा त्रुपिधा द्वारा राम की स्तुति, राम को अपने देवत्व की अनुभूति, गरुड द्वारा नागपाश मुक्ति, धूम्राक्ष प्रकम्पन एवं प्रहस्त वध ।

२२. कुम्भकरणजागरण, कुम्भकर्ण द्वारा रावण-तिरस्कार, सुग्रीव की कुम्भकरण से मुक्ति, कुम्भकर्ण का वैरूप्य ।

२३. राम-लक्ष्मण द्वारा कुम्भकर्ण-वध, इन्द्रजीत द्वारा जृम्भकास्त्र से समस्त वानर-सेना का विनाश, हनुमान द्वारा हिमालय से औषधि-आनयन तथा वानरसेना का पुनर्जीवन, लक्ष्मण द्वारा इन्द्रजीत-वध ।

२४. रावण का युद्धार्थ-निष्क्रमण, लक्ष्मण-शक्ति एवं विभीषण द्वारा उपचार, राम द्वारा ऐन्द्ररथ की प्राप्ति, रावणवध, विभीषण-विलाप, राम द्वारा विभीषण प्रबोध तथा लंका-प्रशासनार्थ आदेश, राम द्वारा अष्टव्रतोपदेश, रावण का और्ध्वदेहिक, हनुमान् द्वारा सीता को विजय का समाचार, सीता की अग्निपरीक्षा, विषादि देवों द्वारा सीता की पवित्रता का अनुमोदन, हनुमान् का अयोध्या-प्रस्थान, विभीषण-सुग्रीव की अयोध्या-यात्रा ।

२५. राम द्वारा सीता के प्रति यात्रापथ-वर्णन, भरद्वाज-आश्रम में आगमन ।

२६. राम-भरत-पुनर्मिलन, अयोध्या-महोत्सव एवं मोज का वर्णन, रामायण-माहात्म्य तथा रचनाकार की विनम्र प्रणति ।

प्रमुख नवीनताएँ एवं परिवर्तन :

वाल्मीकि एवं **भट्टि** पर आश्रित होते हुए भी **म्यू योगीश्वर** ने प्रायः निरपेक्ष-भाव से कथा को विकसित किया है । कवि ने मूल वाल्मीकि-कथा को सपाट ढंग से लिखने का प्रयत्न किया है और इस प्रयत्न ने निश्चय ही मूलकथा का अनपेक्षित विस्तार कम हो गया है, अनेक पात्र कम हो गये हैं, अनेक प्रकरी-वृत्त कम हो गये हैं । अनेक नाम परिवर्तित हो गये हैं और ढेर सारे नये कथांश जुड भी गये हैं । इसके अतिरिक्त कवि ने भारतीय मूलकथा पर जावा द्वीप का रंग चढा दिया है । यदि यज्ञ हो रहा है तो हविष्य-सामग्री, भारत की नहीं जावा की वर्णित की गयी है । यदि प्रकृति-वर्णन का सन्दर्भ है तो नारी प्रकृति—पशु-पक्षियों, फूलों-लताओं के नाम तक जावा द्वीप के हैं । यदि मोज का वर्णन है तो सारे पकवान जावा के हैं । इस सन्दर्भ में संक्षिप्त चर्चा अगले अनुच्छेदों में की जायेगी ।

इस प्रकार **म्यू योगीश्वर** ने अपनी कविता में एक अद्‌भुत स्वाद भर दिया है। जब हम महेन्द्र और विन्ध्य पर जावा को प्रकृति के दर्शन करते है तो एक अद्‌भुत सहज आह्लाद की स्वतः सृष्टि होती है। वस्तुतः *रामायण ककवीन* भारत एवं यवद्वीप को समन्वित संस्कृति का आकर-ग्रन्थ प्रतीत होता है। कुछ प्रमुख नवीनताएं हमारा ध्यान आकृष्ट करती है–

१. विश्वामित्र द्वारा राम-लक्ष्मण की याचना के सन्दर्भ में कहीं भी वसिष्ठ का नामोल्लेख नहीं है।

२. तारकावध-प्रसंग से मारीच को वायव्यास्त्र से दूर फेंकने का वर्णन तो है; परन्तु कवि ने सुबाहु का कोई उल्लेख नहीं किया।

३. कवि परमेश्वर (शिव) के धनुष को पिनाक न कहकर दिव्य-गाण्डीव (२-५७) कहता हैं।

४. राम-सीता के अतिरिक्त लक्ष्मण आदि के विवाह का सन्दर्भ भी कवि ने छोड़ दिया है।

५. रामवनगमन सन्दर्भ में मंथरा का कोई उल्लेख नहीं। कैकयी स्वयं ईर्ष्याग्रस्त होकर भरत का राज्यभिषेक राम का वनवास मांगती हैं।

६. तमसातट पर रामनागरिकों के साथ ही साथ सुमंत्री (सुमंत्र) को भी छोड़कर रात में ही छोड़ कर चले जाते हैं। मूल कथा में सुमत्र गंगा तट तक पहुंचाते हैं।

७. भरत द्वारा तमसातटवर्ती भयानक जंगलों एवं बोहड़ा में राम का अन्वेषण करना **म्यू योगीश्वर** की नई कल्पना है। तमसा भीषण वर्णन अपरिचयमूलक है।

८. चित्रकूट यात्रा में **वाल्मीकि** का कोई उल्लेख नहीं जबकि अत्रि-आश्रम में राम के जाने का वर्णन है।

९. शूर्पणखा सर्वप्रंथम लक्ष्मण से ही विवाह का प्रस्ताव रखती है। लक्ष्मण उसे राम के पास तथा राम उन्हें लक्ष्मण के पास भेजते हैं। लक्ष्मण केवल नाक काटते हैं जबकि मूल कथा में 'नाक-कान' दोनों।

१०. मलूकथा में शरविद्ध मारीच स्पष्टत: सीता और लक्ष्मण का नाम लेता है। ककवीन में यह 'क्रन्दनमात्र' करता है। जिससे सीता को राम के संकटापन्न होने का भ्रम हो जाता है।

११. कबन्ध को **म्यू योगीश्वर** ने दीर्घबाहु (दीर्घबाहु) तथा देवी श्री का पुत्र कहा है।

१२. शबरी के सन्दर्भ में कवि की कल्पना अद्‌भुत कल्पना है जिसका कोई सूत्र **वाल्मीकि** अथवा **भट्टि** में नहीं प्राप्त होता।[१]

१३. पम्पा को कवि कम्प अथवा कम्पा के रूप में वर्णित करता है।

१४. मरते हुए बाली की स्वापराधानुभूति एवं तथा सुग्रीव के प्रति उसका असीम भ्रातृत्व स्नेह निश्चय ही **म्यू योगीश्वर** की मौलिक उपलब्धि है। ऐसी मार्मिक अभिव्यक्ति *वाल्मीकि रामायण* में भी नहीं है।

१५. सीतान्वेषण - सन्दर्भ मे वानर वीरों ऋच्छबिल में प्रवेश एवं स्वयं प्रभा से मिलने के वृत्त को **म्यू योगीश्वर** ने **वाल्मीकि** के सर्वथा विपरीत प्रस्तुत किया है।

---

१. राम के पूछने पर शबरी अपने तप का कारण बताती है- शंकर के शाप के कारण विष्णु को वराहा रूप में उत्पन्न होना पड़ा। वराह रूपधारी विष्णु ने एक पर्वत गुफा में निवास किया और शबरी का भोजन खा लिया। फलत: वराह विष्णु की मृत्यु हो गई। उस वराह का मांस शबरी ने खाया जिससे की उसकी त्वचा अतिशय काले रंग की हो गयी। इस विवरण के बाद ही शबरी राम से 'स्वयं को छूकर पवित्र कर देने का' अनुरोध करती है। राम शबरी को छूते हैं जिससे तत्काल उसे दिव्य वर्ण हो जाता है। (ककवीन ६.१०६-११२)

१६. सागर-सन्तरण के प्रसंग में ककवीन कार्य ने नागमाता सुरसा द्वारा हनुमान शक्ति परीक्षण का वृत्त उपेक्षित कर दिया है। सिंहिका प्रसंग में कवि ने सिंहिका को डाकिनी (तुलसीदास निशिचरि एक सिन्धु महँ रहई कहते है) नाम दिया है।

१७. कवि त्रिजटा को विभीषण की पुत्री एवं रूप सौन्दर्य सम्पन्न एक सहृदय युक्ति के रूप में (८-१४०) चित्रित करता है सम्भवत: यह कवि का स्वाभिलक्षित परिवर्तन है। अन्यथा मूल कथा की त्रिजटा तो वृद्धा राक्षसी है-

सीतां ताभिरनार्याभिर्दुष्टवासन्तजितां तथा।
राक्षसी त्रिजटा वृद्धा प्रबुद्धा वाक्यमब्रवीत् सुन्दर॥

१८. ककवीन के हनुमान अकेली सीता के समक्ष नहीं प्रकट होते। वह तब सामने आते हैं जब सीता और त्रिजटा एक साथ होती है (८-१७८)

१९. सीता द्वारा त्रिजटा ने अपनी वियोग-व्यथा के निवेदन में (८-१४९) पर्व (महाभारत) एवं काण्ड (रामायण) धर्म ग्रन्था का उल्लेख। **म्यू योगीश्वर** की यह भ्रान्ति निश्चय ही भारतीय वाङ्मय के पौर्वापर्य प्रति उनकी अनिभिज्ञता को संकेतित करती है।

२०. लक्ष्मण युद्ध में मेघनाथ को उनकी सात पत्नियों के साथ ही साथ मारते हैं।

२१. लंका विजय के अनंतर भरत को सूचना देने के लिये हनुमान लंका से ही प्रस्थान करते हैं। (वायुमार्ग से) जबकि मूल कथा वह भारद्वाज आश्रम से जाते हैं।

२२. राम द्वारा विभीषण को दिया गया अष्टव्रत्तोपदेश कवि का स्वयं चिन्तन है मूल कथा में यह प्रसंग में नहीं है। इसी प्रकार वानर सेना के सम्मान में भरत द्वारा दिये गये भोजोत्सव का वर्णन भी **म्यू**

योगीश्वर विशुद्ध मौलिक योगदान है। जो कि कवि युगीन यवद्वीपीय भोज परम्परा का सूक्ष्म चित्रांकन प्रस्तुत करता है।

२३. *रामायण ककवीन* का समापन **वाल्मीकि** की शैली में हुआ है। **भट्टि** का ग्रन्थ जहां 'व्याकरण शिक्षा' को ग्रन्थ रचना का लक्ष्य बताया है **म्यू योगीश्वर** मोक्षप्राप्ति को ग्रन्थ की फलश्रुति घोषित करते हैं।

रामायण ककवीन का साहित्य सौन्दर्य एवं कालिदास

वाल्मीकि एवं **भट्टि** की राम कथा के आधारपीठ पर स्थापित होने के बावजूद भी *रामायण ककवीन* की कथा विन्यास शैली अत्यन्त मौलिक एवं सहज प्रतीत होती है। ऊपर प्रस्तुत किये प्रमाणों से भी कवि की मौलिक सूझ बूझ एवं क्रान्तिकारी निर्णयों (जैसे त्रिजटा को एक नये रूप में प्रस्तुत करना बाली का भ्रातृस्नेह आदि) का मूल्यांकन किया जा सकता है।[१]

ककवीन के अन्तरंग परिशीलन से मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचता हूं कि **म्यू योगीश्वर** न केवल **वाल्मीकि** एवं **भट्टि** से बल्कि कविकुलगुरु **कालिदास** की कृतियों से भी परिचित था। प्रवर्षण-गिरि पर सीता की स्मृति में हुए राम की व्यथाएं सर्वथा मेघदूत के विरही यक्ष की अभिव्यक्तियों के अनुरूप हैं। अपने मंतव्य को प्रमाणित करने हेतु ग्रन्थ का साक्ष्य दे रहा हूं।

व्यथित राम कहते हैं— हे प्रिये ! हरिण को देखकर तुम्हारी चञ्चल चितवन की, यमराज को देखकर विलसित गति की, चन्द्रमा को देखकर तुम्हारी मुखछवि की, नदी की चंचल तरगंमाला को देखकर तुम्हारे कटाक्ष की तथा नृत्यरत मयूर के कलाप को देखकर तुम्हारे केश-कुन्तल की कल्पना में करता हूं।[२]

---

१. डा. थ्योडोरोड पिगोड की यह टिप्पणी इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती है – दि पोएमं फालोज दि वाल्मीकि ट्रेडीशन इन इट्स डेवलपमेण्ट आफ दि प्लॉट बट इट इज नाट ऐन अडाप्टेशन ऑफ वाल्मीकि रामायण। (लिटरेचर आफ जावा प्रथम पृ.१७६)

२. तुलना करे:— श्यामास्वङ्गचकितहरिणी प्रेक्षणे दृष्टिपातं
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान्।

रिङ् किडङ् कतुतुरिङ वुलत् मरूम्
रिङ् लिमन् कुतुतुरिङ्डल्ङ् वजेद्।
रिङ्ग वुलन् कतुतुरिङ् मुकाबुङ्ह
हाह! हयुन्त मङ्वेश रि डहुलुन्॥

व्वय निकङ् ल्वहदलेम य चञ्चल
र्याक् न्य तुल्य हलिसन्त यञ्चल।
रम्बुतिङ् म्रक अडिगेल्य ताकिरिस
व्यक्त लिडकु गेलुडन्त या किल॥

— रामायण ककवीन् सर्ग - ७, २४-२५

हे प्रिये !देवदारु वृक्षों का स्पर्श करता हुआ कोमल पवन मलय पर्वत से प्रवाहित होता है। मेरे नासारन्ध्रों को आप्यायित करता हुआ सौरभ चतुर्दिक बिखर जाता है ! निश्चय ही यह सौरभ तुम्हारे कपोलमण्डल का है, मैं यही गुनता हूं।[१]

कोमलाङ् मलय मारुतो मिरिर् देवदारु इनरस्न्य रिङ्डलस।
कम्न्य सुम्रकुमरेडिरुङ् सुमार् तुल्यागन्ध नि पिपिन्त यक् हिडेप्॥२७

हे प्रिये ! दिन के समय तो मैं बहुत व्यथित नहीं होता, वन के अनेक दृश्य मनोविनोद के साधन होते हैं, परन्तु रात्रिवेला मैं तुम्हारे वियोग में डूब जाता हूं— एकदम निर्लक्ष्य दिशाहीन एवं असहाय। मैं चाहता हूं कि रात छोटी हो, अथवा सदैव दिन ही बना रहे ! तुम्हारे वियोग में कितना दीन एवं असहाय हो गया हूं ![२]

उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिसु भ्रूविलासान्
हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न ते चण्डिः सादृश्यमस्ति॥ ४६ (उत्तरमेव)

१. तुलना करें: भित्वा सद्यः किसलयपुटान् देवदारुद्रुमाणां
ये तत्क्षीरस्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः।
आलिङ्ग्यन्ते गुणवति ! मया ते तुषाराद्रिवाताः
पूर्वं स्पृष्टं किल यदि भवेदङ्गमेभिस्तवेति॥ ५० (उत्तमेघ)

२. इन दो छन्दो का समानान्तर भाव मेघदूत के दो छन्दों में द्रष्टव्य है–
सव्यापारमहनि न तथा पीडयेन्मद्वियोगः आदि तथा संक्षिप्येत क्षण इव कथं दीर्घयामा त्रियामा आदि॥५१

काल निङ रहिन तन् मकुङ दहत
क्वेह् तिनोङ्क रिङलस्य लालन।
काल निङ वेङि अतह् मकुङतेमेन
ततिंनोकुं त परन्निकङ मनह्॥ २८

प्रार्यकुनं वेङि येक मेङ्गल
नित्यकाल रहिना कुलेङ लना।
हाह्! लुकन्वित गेलान नि डहुलुन्
कनोनडेन् अतह् कितेङ् कुलेम्॥२९

—रामायण ककवीन, सर्ग -७

इन प्रकार मेघदूत एवं ककवीन में अद्‌भुत भावसाम्य है जो यह सिद्ध करता है कि इन छन्दों की रचना के समय **कालिदास** के यक्ष की वियोगानुभूति **म्यू योगीश्वर** के अवचेतनमन में अवस्य थी। **भट्टि** के **न तज्जलं यत्र सुचारुपंकजं** सी अविकल उपादान पहले प्रदर्शित किया जा चुका है।

परन्तु कवि सर्वत्र संस्कृत कवियों का अनुगामी ही नहीं है। वह विविध सन्दर्भों में अपने स्वंतंत्र चिन्तन एवं क्रान्त-प्रतिभा-प्रकल्यन का भी आकर्षक प्रयोग करता है। उसका अमूर्त औपम्य कहीं कहीं औचित्य एवं सौन्दर्य की पराकाष्ठा का स्पर्श करता है। दशरथ एवं तीनों राजमहिषियों की उपमा कवि अनूचान विद्वान एवं वेदत्रयी से प्रस्तुत करता है—

कदि हर्ष सङ् महर्षि सक्तेन ऋक् साम लेन यजुर्वेद।
मङ्क न सङ दशरथ वेह् हर्ष सिर त दे महादेवी॥ १.९१

सीता के रूप-सौन्दर्य से व्यामोहित रावण प्रशंसा के स्वर में कहता है — हे दिव्यरूपे! कौन हो तुम? तुम्हारा सौन्दर्य अप्रतिम है। चन्द्रमा भी तुमसे सौन्दर्य में हीन है क्योंकि वह दिन में म्लान हो जाता है। कमल भी, रात्रि में सम्पुटित हो उठने के कारण, तुम्हारी तुलना में सर्वता असुन्दर है।

अप कित दिव्यरूप मनुसुप मङ्लप् त सेकर
अतिशय ता पडन्त रिकनङ् ह्यपूर्ण तेमेन्॥ ५.६९

कुसुम सरोज रिङ् तलग कप्व सेडेङ् मुमेकर
रहयु सुगन्ध वर्ण य सवङ् मपुतिह् सवने ह।
तुवि तमतन् पडेकन हयुन्य मसोर्जुग य
अपन् उमलुय् कुचुप्य रिकनङ् वे नि तण्डहयु॥ ५.७०

सीताहरण से संक्षुब्ध राम सारी त्रिलोकी को नष्ट कर देने का संकल्प करते हैं। यह यक्ष गन्धर्व राक्षस यहां तक कि 'काल' को भी नष्ट कर देना चाहते हैं। **म्यू योगीश्वर** के शब्दों में

दिनकर तुवि तोह्यङ सूर्य देडिक्व
प्रभाव गिरिवरशतशीर्ण सागरासात् देङ्कु।
सहन-हन् निकङ्रात् हेन्त्य तातन् पशेष
उरगपति उलागौडङ्कारि पाताल शीर्णा॥

डुनि-डुनि इकनङ् विल् हेन्त्य तातन् पशेष
धनपति नुवि दुःका यक्ष, य स्यूह मात्य।
अकुत मलिह् कालोमात्यनङ् कालमृत्यु
सकलनुवचूर्णा भूमि देङ्कन् पुसुस्य॥[१])

— रामायण कक. सर्ग.६-५७, ५८

---

१. तुलना करें –
त्रैलोक्यं तु करिष्यामि संयुक्तं कालकर्मणा।
न ते कुशलिनीं सीतां प्रदास्यन्ति ममेश्वराः॥
नैव यक्षा न गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः।
किन्नरा च मनुष्या वा सुखं प्राप्सन्ति वत्तक्षप॥
नाशयामि जगत्सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्।
यावद्दर्शनमस्या वै तापयामि च सायकैः॥ – वाल्मीकि रामायण, अरण्य. सर्ग.६

मानवीय संवेदनाओं के चित्रण मे कवि ने अपने वैयक्तिक सहृदयता का परिचय दिया है । श्रीराम भर्त्सना से अपने पापों की प्रत्यय अनुभूति करते हुए, वानरराज बाली का मृत्यु की अन्तिम घड़ी में उमड़ा हुआ भ्रातृ स्नेह इसका सर्वोत्तम प्रमाण है ।

'सुग्रीव ! मेरे भाई ! मेरे पास आओ ! मुझे विदा दो । ईश्वर करे अगले जन्म में हम दोनों पुनः 'सहोदर' के रूप में पैदा हों । हमारा यही निवास स्थान हो, यहां यही ऋष्यमूक पर्वत हो, पके फलों वाले वृक्ष हों और मधु का अक्षय कोश हो, इन वचनों के साथ बाली ने अश्रुपूरित नेत्रों से अपना सुवर्ण मुकुट सुग्रीव के हाथों में रखा और कहा – 'अचिन्त्य परमेश्वर ने पृथ्वी पर हम दोनों की प्रसन्नता से नहीं जीने दिया । इसलिये मैं (पार्थव खुशियां तुम्हें सौंप कर) स्वर्गमुख के लिये ऊपर जा रहा हूं ।'

समङ्कनारिङ्कतसौ पराङ्के सुग्रीव !
मंवीत ककन्त मत्य ।
कुनङ् त रिङ् जनम देलाह् सोवाह्
धर्मा भटारे कित सानकाततह् ॥१९२

म्वङ् तुङ्लातह् कहन्त कालीह्
अनुङ् मुनुङ कोनिङ्कुनिङ् कयुन्य ।
फलन्य मद्यन्य मधुन्य वृद्धि राद्
हेन्त्य यद् भुक्त्य यरिङ देहाल ॥१९३

लावङ् इकङ् देव अचिन्त्यशक्ति
तन्वेह् कितान्तेन् परिङान् पमुक्त्य ।
स्या कुक् रुहुन् मंगुकेह् विभूति
पड्दे निकङ् देव अतह्य तूति ॥ १८०५

—रामायण ककवीन, सर्ग ६

यह सन्दर्भ सायाम है। जिस पर एक स्वन्त्र निवन्ध लिखा जा सकता है। अन्त में एक तथ्य की ओर विद्वज्जनों का ध्यान और आकृष्ट करना चाहूंगा और वह है —**म्यू योगीश्वर** का संस्कृत छन्दविचिति का तरुस्पर्शी ज्ञान एवं अभ्यास ! उपर्युक्त उदाहरण श्लोकों में ही कवि का उपजाति नलिनी आर्या एवं रथोद्धता विषयक वैपुण्य स्पष्ट है। परन्तु लंका-दाह-प्रसंग में कवि ने प्रसंग के ही अनुकूल 'दण्डक' का प्रयोग करके अपने छन्दोनैपुण्य को शिखर पर पहुंचा दिया है। कुछ पंक्तियां उद्धन कर रहा हूँ। उस भीषण अग्निज्वाला में तड़ाग के विहगों की स्थिति का वर्णन है।

तलग तलग रिङ् कडत्वन् विन्त्वन्य
देनिङ् मणिक् चन्द्रकान्ते दङ्न्तन्।
मिने शुष्क यासात् य केसिप् मिकर
निङ् अशोकाङ्सुत्यन् कसूबन् पनस्।

रुक्ष नक्वेहन्य याकिङ् मकिङ्किङ
मनुक् न्यानडिस् मोनि कोलाहलान्।
बला वकवाका गिलानङ् पिलुङ् हंस
भाषा सशोकाम्वरासू इकङ् सारसा.. आदि।

— रामायण ककवीन, सर्ग ११.२

अलंकृतशैली के सर्वश्रेष्ठ कवि **महापण्डित माघ** ने भी सुवदना, नर्दरक, वंशपत्रपतितं तथा अन्यान्य अल्पप्रयुक्त वार्णिक वृत्तों में, मात्र अपनी छन्दोविचिति-चातुरी को प्रदर्शित्र करने के उद्देश्य से मात्र दो-चार श्लोक लिखे हैं। परन्तु ऐसे ही दुर्घट एवं दुष्प्रयोज्य वृत्तों में **महाकवि योगीश्वर** ने सर्ग के सर्ग लिख डाले हैं। (उदाहरणार्थ -पन्द्रहवें सर्ग में अश्वललित छन्द, उन्नीसवें में स्रग्धरा तथा तेईसवें में चञ्चललीला का भरपूर उपयोग) इस छन्द : प्रयोग से **महाकवि योगीश्वर** की कवित्वप्रतिभा का अनुमान लगाया जा सकता है।

यवद्वीप रामायण में चित्रित रूप सौन्दर्य विविध है। एक ओर कवि जड़ जगत् के सहजात एवं ऋतुपरिवर्तनजन्य अभिव्यक्त करता है तो दूसरी ओर चेतन जगत की रमणीयताओं को ये रमणीयताएं भी मुख्यत: द्विविध हैं। आन्तर एवं बाह्य यद्यपि रामकथा की **भट्टि कालिदास** अनुगतता के कारण **योगीश्वर** का रूप सौन्दर्य वर्णन बहुत कुछ पर प्रत्ययाश्रित एवं अधमर्ण प्रतीत होता है। परन्तु एतावन्मात्र ही वास्तविक सत्य नहीं है। इन वर्णनों में यवद्वीपीय माटी की भी गन्ध पर्याप्त मात्रा में मिली जुली है—जिसका और अधिक परिष्कृत रूप परवर्ती *पाञ्जी* (प्रेमाख्यान) साहित्य में देखने को मिलता है।

योगीश्वर प्रणीत *रामायण ककवीन* में उपलब्ध सौन्दर्य वर्णन वस्तुत: भारतीय सौन्दर्य चेतना एवं अवधारणा अनुगामी है। फिर भी उसमें प्रतिपद नवीनताएं दृष्टिगोचर होती हैं जिनका सम्बन्ध यवद्वीपीय सामाजिक (सञ्चेतनाओं का नैसर्गिक विशेषताओं से हैं नवम शताब्दी ई. के यवद्वीप में जो सामाजिक परिस्थितियां थी, जैसा कौटम्बिक परिवेष था और जैसा सहज चिन्तन था वह सभी रामायण के सौन्दर्य वर्णनों में रूपायित हुआ है। यह सौन्दर्यवर्णन को दो प्रकार का है—बाह्य एवं आंतरिक। बाह्य सौन्दर्य वर्णन की प्रकृति की परिवर्तनशील सुषमा के मादक चित्र तथा स्त्री पुरुष के अंगसौष्ठव जन्य वैशिष्ट्य हैं। तो आन्तरिक सौन्दर्य में वाग्यव्यहार के अनुभूतिप्रवण मर्मस्पर्शी संवेदन है जिन्हें **महाकवि भवभूति** अत्यन्त वैयक्तिक तथा अनिवर्चनीय मानते हैं – **हृदयं त्वेव जानाति प्रतियोगं परस्परम्**।

राम एवं लक्ष्मण की मिथिला यात्रा का संदर्भ प्रकृति सौन्दर्य के अनूठे चित्र प्रस्तुत करता है। सरोवर में कुमद पुष्प अपनी लालिमा के कारण आग की लपटों जैसे प्रतीत हो रहे थे और उन पर बैठे भ्रमर गण धूम-बिम्ब के समान ।

उत्फुल्ल तङ् कुमुद कप्व मिकर्पदाबङ्
र्याक् र्याक् निकङ तलग येक दुमिह्य चाल।

व्यक्तन् कतोन् किद दिलह् निडपुय्य मोलह्
कुम्बङ् भ्रमन्त इ रुहुर्न्य अकिन कुकुस्न्य॥ २.४

चेतन-जगत के व्यवहारों को जड़ प्रकृति पर आरोपित करने से प्राकृतिक सौन्दर्य में विलक्षणता सी आ गयी है। वस्तुत: ऐसे सन्दर्भों में कवि ने समासोक्ति अलङ्कार एवं बिम्बविधान का सहारा लिया है। वायु से प्रकम्पित नीलकमलिनियां इतनी चचंल हो उठीं थी कि भौंरे उन पर बैठ नहीं पा रहे थे। ऐसा लगता था मानो कुमुदिनियों द्वारा पूर्वोपभुक्त अपने लम्पट नायकों का वे तिरस्कार कर रहीं थी-सपत्नीजानित ईर्ष्या के कारण

तुङ्गुङ् प्रकम्पित तिनूब्रिडडीन्य मोलह्
तुल्यानुलक्कदि महारि लकिन्य मेलिक्।
कुम्बङ् मरिङ् कुमुद डानि दुमिह्य मेवा
ईर्ष्या स्वभाव निकनङ् विनि घार कासीह्॥२.८

राम के साथ मैथिली को देख कर शूर्पणखा अपने संकल्प (राम को प्रतिरूप मे वरण करना) पर लज्जित हो उठी और लक्ष्मण के पास जा पहुंची। उसके मांसल सौन्दर्य वर्णव करते हुए कवि कहता है कि उसका मुख चन्द्रमा के समान था। उसकी कटि मात्र दो बीते व्यास की तथा लचीली थी। आंखें मधुर एवं शान्त थीं। जघन सुघटित था तथा दीप्त नखों से युक्त उँगलियां साही के कांटों जैसी थीं। उसके नितम्ब विशाल तथा पयोधर उन्नत थे दन्तपंक्तियां धवल तथा संसक्त थी। नासिका सुन्दर थी।

रत्नजटित उसके कर्णाभूषण मनोज्ञ एवं आकर्षक थे। पुष्पालंकरणों से ओत प्रोत थी उसकी दृष्टि एवं मुस्कान मधुर थी अपनी अदम्य कामवासना के कारण वह लज्जाभाव को मानो तिलाञ्जलि दे चुकी थी।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि शुपर्णखा का रूप सौन्दर्य अमर्यादित्य तथा उद्दीपक था। वस्तुत: यह सौन्दर्य सहज एवं नैसर्गिक कम था। आरोपित अधिक क्योंकि शूर्पणखा का उद्देश्य था कुमार लक्ष्मण को अपने प्रेमपाश में बाँधना।

जघनन्य मगौङ् सुसुन्य बुन्तिर,
मपुतिह् हुन्त्वलरिस इरुडन्य शोभा।

सिसिरन्य मणिक् मनोज्ञ सश्री मसिकर,
राम्य मरुप्रकन् मसुम्पिङ्॥

ममनिस्त वुलत्म्य लेन् गुयुन्य
इकन ल्विर्न्य मकिन् सराग मह्युन्।

रि सवेलि हियुन्यता इरङ्न्य रि
सिरङ् लक्ष्मण यन्मसौत मोजर्॥

— रामायण कक. ४.३२, ३३

परन्तु उसके ठीक विपरीत है विदेहनन्दिनी की सहजात सुन्दरता जिसके विषय में **योगीश्वर** कहते हैं वे आंखे निर्थक है जिन्होंने वह लावण्य नहीं देखा, वे नासारन्ध्र निष्फल जिन्हें सीता के अंगों की गन्धानुभूति नहीं, वे श्रवणयुगल निर्गुण हैं जिन्होंने उनकी मिठासपगी वाणी नहीं सुनी ।

त्रिभुवन का साम्राज्य यदि सीता की प्राप्ति के लिये शुल्क रूप में चुकाना पड़े तो कम ही हैं !

विष्णुपत्नी लक्ष्मी और शची इन्द्राणी सीता के रूप लावण्य के समक्ष कुछ नहीं है । गिरिसुता (पार्वती), चन्द्रप्रिया, रोहिणी और रति अपूर्व रूप सौन्दर्य सम्पन्न है । यह बात भी मूढ ही कह सकता है ।

यद्यपि सीता का यह वर्णन शूपर्णखा द्वारा किया गया है परन्तु इसमें कृत्रिमता नहीं है । इस वर्णन में अप्रस्तुत विधानों का स्वारस्य बड़ा ही मार्मिक है । लक्ष्मी, गौरी, शची, रोहिणी तथा रति के भी रूप लावण्य की अवमानना कर कवि ने मानो सीता के सौन्दर्य की अनिर्वचनीयता को पराकाष्ठा पर पहुंचा दिया है ।

विविध सांसारिक उपमानों द्वारा सौन्दर्य का वर्णन करना, मात्र उसकी स्थूलता को रुपायित करना जैसे शुक जैसी नासिका, हिरनी जैसी आंखें, कम्ब्र जैसी ग्रीव

आदि। परन्तु साभिप्राय एवं अनुभवसापेक्ष असाक्षात् प्रतितमानों द्वारा सौन्दर्य वर्णना करने की बात ही कुछ और है **कालिदास** भी शकुन्तला के रूप लावण्य का स्थूल वर्णन करते करते ऐसी ही स्थिति में आ जाते हैं।

अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघम्
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः॥

अनाघ्रात पुष्प, अनाविद्ध रत्न, अनास्वादित मधु, कररुहालून किसलय तो सांसारिक उपमान है। इन्हें भला कौन नहीं समझ लेगा! परन्तु किसी रमणीय के सौन्दर्य को 'पुण्यों का अखण्ड फल' कहना तो सागर में सागर भरना है। इसकी अर्थ वत्ता का विस्तार ही असीम है। जितनी सहृदयता होगी, इस विशेषण का अभिप्राय भी उतना ही होगा।

महाकवि योगीश्वर भी यही कहते हैं। शूर्पणखा का रूप वर्णन तो वह आद्यन्त मात्र पार्थिव प्रतीकों से करते हैं परन्तु सीता का लावण्य वर्णन अप्रस्तुत-विधानों से!

अतह तहन्यतन्त अप तप्वननोण्डहयु
इकन इरुडत तन्सफल यन्तनिकाऋकन्।
तुवि तलिडन्त निर्गुण य तन्पडुजन्र्य ऋडौन्
सुक परिपूर्ण रिड्ह्यु, असिङ्कहनन् रसिका॥

हरिदयिता शची तुवि तमन् पमडान हयु
गिरिसुत रोहिणी रती अपूर्व तमन् पमडे।
हयु रसिका कवेह् रहयु लिङ् निडपुङ्गुडिक
अनकिबि सङ् रघूत्तम जुगाह्यु लिङ्क पुतुस्॥

—रामायण ककविन् ५.१४, १६

योगीश्वर मतरामवंशी नरेश **बलितुंग** के राजकवि थे। नवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में जावा का यह हिन्दु साम्राज्य वैदिक संस्कृति के परिपालन में

निष्ठापूर्वक लगा हुआ था। यवद्वीप में भी भारत की ही तरह चातुर्वर्ग्य व्यवस्था विद्यमान थी। समाज में कर्मकाण्ड प्रवीण धर्माचार्यों तथा सन्यस्त साधु सन्तों का अपूर्व सम्मान था।

योगीश्वर के सारे रूप बिम्ब प्रभावित तो हैं **आदि कवि वाल्मीकि** से ! परन्तु अधिकांश वर्णनों में यद्वीपीय संस्पर्श एवं संस्कार भी सम्मिलित हैं। जब वह रावण के यति वेष का वर्णन करते हैं तो निश्चय ही कर्मकाण्डी पुरोहित का चित्र साकार हो उठता है। एक परम सात्विक शुद्ध शैव सन्यासी। देदीप्यमान केशकुन्तल, बाहर निकली शिखा, निर्मल धवल दन्तपंक्तियां रुद्राक्ष की मालायें कंधे पर लटकता जलपात्र लाक्षारस के समान लाल बल्कल वस्त्र। वह पर्यटन करता हुआ मंत्र पाठ कर रहा था !

अतिशय शुद्ध हुन्तु मपुतिह् स्फटिकोपम् वै
तुवि मगणित्रिकुण्डल वलुह्य सिनण्डडिरि।
लितु हयु वर्ण लाक दलवङ् निरराम्य मबाङ्
लुमकु मनस्य येक दलिहनिरन् कतिडिर्॥

मजप महुन्यकिन् त सिर मंत्र तिहिर लुमकु॥ ५.६६

इस प्रकार **योगीश्वर** नारी तथा पुरुष तथा दोनों के ही अवसरोचित सौन्दर्य निरूपण में दक्ष हैं। अवसरोचित से मेरा तात्पर्य है जीवन की विविध परिस्थितियों (मनोभावों) के अनुरूप सौन्दर्य का वर्णन होना।

स्थूल अंगों का सौन्दर्य वर्णन अत्यन्त सरल कार्य है, परन्तु सूक्ष्मातिसूक्ष्म अगोचर निगूढ अंगो (मन,हृदय आत्मा) की सुन्दरता को रूपायित करना किसी भी कवि के लिये कठिन काम है संस्कृत कवियों में **महाकवि भवभूति** इस कला में पारंगत है।

अपहृता वैदेही के लिये विलाप करते राघव के हृदय को अभिव्यक्त करने में **योगीश्वर** को भी अभूतपूर्व सफलता मिली है राम कहते हैं— हे प्रिये ! तुम्हारे

वियोग में सूखे मुरझाये से पुष्प भी मुझ शठ की तुलना में श्रेष्ठ हैं क्योंकि मैं तुम जैसी भार्या को खोकर भी मृत्यु का वर्णन नहीं कर पा रहा हूं

कुसुम सफल दिव्यसिंहन्य तीव्रे कितान्तिन्
अतिशय किर किडिक्ङ् न्यार्कसह् देन्त मोनिङ्।
अकु कलनत कासिह पुष्प तातन् पडे य।
तय कित तुवि देवी तन् पिजह् दे न्युनिङ्कु॥ ६.४१

'प्रिये ! मेरे प्रेम की परीक्षा लेने के लिये तुम कहीं छिप तो नहीं गयी हो ? तुम परिहास तो नहीं कर रही हो ? तुम्हारे अभाव में मेरा जीवन संशयापन्न हो उठा है। और मैं मरकर भी आना चाहता हूं।'

अप कित ममरीक्षा दोन्त मिङ्गिप् उमिङ्गित्
प्रहसनत् त कुनङ्दोनिङ हुमौत गुय्व गुय्वन्।

वितु तटटि हुवसु हे तन्बुहिङ् शोक मोनिङ
विषमतिकि हुरिप्कुन तूत मिङ्गत् प्व् देन्त॥ ६.४२

इन पद्यों से सीता के प्रति राम के हृदय के विलक्षण अनुराग कवि ने प्रकट किया है। यह भी गूढ़-सौन्दर्य का प्रकाशन है।

परन्तु सीता के वियोग में जर्जर वही राम क्रोध एवं अमर्ष के आवेग में 'महाकाल' का रूप धारण कर लेते हैं। वह श्रेष्ठ पर्वतों को धराशायी कर देने तथा सागर को भी सुखा देने की प्रतिज्ञा करते हैं। आज सारा संसार विशीर्ण हो उठेगा। पृथ्वी पिस जायेगी। कुबेर अवसन्न होंगे और यक्षगण कालग्रास बन जायेंगे। देवगण अब नहीं रहेंगे। अन्तरिक्ष चूर चूर हो जायेंगे।

सीतावियोगी राम ने यह कहते कहते ही सृष्टि के विनाशार्थ धनुष पर कराल शर सन्धानित कर लिया।

महाकालवेषी राम का यह रूपाङ्कन योगीश्वर ने विलक्षण रीति से किया है। इस वर्णन में सर्वसमर्थ राघव के आहङ्कारिक एवं सर्वक्षयी रूप की भयावह

अभिव्यक्ति हुई है। सीता अपहरण? और वह भी राम सरीखे महाधनुर्धर समरविजयी नायक की आंखों के सामने? यह असह्य अपमान ही राघव को काल भैरव बनने के लिये बाध्य कर देता है।

दिनकर तुवि साह्येङ् सूर्य दडिक्व प्रभाव
गिरिवर शत शीर्णा समागरासात् देड्कु।
सहन हन निकड्रात् हिन्त्य तातन्पशेष
उरगपति उलागौड़ क्ङरि पाताल शीर्णा।
डुनि डुनि इकनङ् व्विल हिन्त्य तातन्पशेष
धनपति तुवि द्रह्का यक्ष यस्यूह मात्य।
अकु त मलिह कालोमात्यनङ् कालमृत्यु
संकलभुवनचूर्णा भूमि देड्कुन् प्रसुस्य॥
नहनिकन वुवुस्सङ राघवासिहनाद
तिहङकिनिकनङ् ह्व देव सक्रोध रिड्रात्।
प्ररूदित मनड्स्सङ् लक्ष्मणासिह् मनिम्बह्
मुहुतकिनिनड्रात् मात्य तातन्पदोष॥

—रामा. कक. ६.५६, ५८, ६०

कुमार भरत द्वारा लंकाजयी वानरसेना को भोज पर आमंत्रित करने के संदर्भ में परिहास पेशल विदूषक भाण्डीर द्वारा व्यञ्जनों पकवानों का जैसा परिचय दिया जाता है। तथा जिस वाक्कौशल से मेहमानों की अगवानी की जाती है इससे तद्युगीन यवद्वीपीय वाङ्माधुरी एवं वाचिक सौन्दर्य का परिचय मिलता है। कुछ सन्दर्भों द्वारा उपर्युक्त मन्तव्यों की पुष्टि की जा रही है।

सर्वाधिक आकर्षक स्थल वे हैं जहां कवि ने अत्यन्त मौलिक विचार व्यक्त किये हैं। कवि कहता है सचमुच दुःख हृदय हीन ही । बिना किसी पूर्व सूचना के वह आ धमकता है और सुख को ढँक लेता है परन्तु यही तो वास्तविक जीवन है। सुख एवं आवाजाही।

दुःख का रंग काला और सुख का लाल। फिर भी वे दोनों समन्वित हैं। यह समन्वय वाद्यवृन्द जैसा है जिसमें तन्त्र (वीणा) एवं सुषिर (बांसुरी) एक ही साथ बजते हैं। यह शरीर भी एक वाद्य है। जिसे हम बजाते हैं। यह आह्लाद एवं अवसादभरी ध्वनियाँ इस प्रकार हैं—

लल्लु तनेरडिक्कङ् लर यर् सिलत्
तन तिलिङ् लिनिप्रत् निकनङ् सुक।
मरहकिन् सुक-दुःक निकङ् सिरात्
हन रिकेङ् ददि तन्ददि यापसह्॥
लर हत्रुङ् सुक लाक सकण्ड य
कदि त मंसि धिनाष मसङ्धनि।
न्यसि शरीर य मंश पमस्यन
य हिबिकन् सुक दुःक लना पिसन्॥

—रामा. कक. २६. १२ १३

सुवर्णद्वीपीय रामकथा के प्रमुख वैशिष्ट्य

ई० पू० छठीं शताब्दी में उत्पन्न **भगवान् तथागत** एवं **महावीर** ने सनातन वैदिक धर्म के कुछ बिन्दुओं पर अपनी अनास्था प्रकट की। दोनों ने ईश्वर के अस्तित्व का प्रत्याख्यान किया। **गौतम बुद्ध** ने जातिप्रथा का विरोध करते हुए कर्माश्रित वर्णव्यवस्था को प्रशस्त माना तो **महावीर** ने वैदिक यज्ञों में निरीह पशुबलि का घोर विरोध किया।

बुद्ध एवं **महावीर**, वस्तुतः सनातन वैदिक धर्म के समीक्षक मात्र थे। वे धर्म में आई विकृतियों के संशोधक मात्र थे, उसके आत्यन्तिक विरोधी नहीं। परन्तु दुर्भाग्यवश, परवर्ती बौद्ध एवं जैन मतावलम्बी, वैदिकधर्म के सर्वात्मना विरोधी बनने में ही अपने अस्तित्व की सार्थकता समझने लगे। अनेक पाश्चात्य मनीषियों ने भी यह कहा है कि जिस रूप (वैदिक धर्म-विरोधी) में बौद्ध धर्म का, आगे चलकर प्रचार-प्रसार हुआ-संभवतः वह **भगवान् तथागत** को भी अभीष्ट नहीं था।

बौद्ध एवं जैन धर्म के इस वेदविरोधी दृष्टिकोण तथा समकालीन राजसत्ताओं द्वारा उन्हें भरपूर संरक्षण दिये जाने के कारण सम्पूर्ण भारत में एक वैदिकधर्म-विरोधी वातावरण का सूत्रपात हुआ। वैदिक देवी-देवताओं तथा धार्मिक व्यवस्थाओं पर एक प्रश्नचिन्ह सा लग गया। एक प्रतिगामी संस्कृति का जन्म हुआ। राम, कृष्ण, नल, युधिष्ठिर, हरिश्चन्द्र, रन्तिदेव सरीखे महामान्य लोकनायकों को उपेक्षित कर जैनमतावलम्बियों ने अपने त्रिषष्टि शलाकापुरुषों की साहित्य एवं संस्कृति में प्राणप्रतिष्ठा की।

ईश्वर के प्रति अनास्था के कारण, ईश्वर के अवतारों में भी इन सम्प्रदायों की कोई निष्ठा नहीं थी। **महर्षि बाल्मीकि** द्वारा *रामायण* में तथा **कृष्ण द्वैपायन व्यास**

द्वारा *श्रीपद्भागवत* में प्रतिपादित भगवान् राम एवं कृष्ण के आनन्दकन्द परमात्मस्वरूप को भी इन सम्प्रदायों ने विकृत करने का पूर्ण प्रयास किया। राम तथा कृष्ण वैदिक धर्म-सौध के दो सुदृढ़ स्तम्भ थे। वे भारतीय जनमानस की धर्मनिष्ठा के अयलसाध्य, सहज बोधगम्य तथा चिरसंस्तुत प्रतिमान थे। सम्पूर्ण लोकप्रवृत्तियाँ उन दोनों के दिव्य चरित में अनुस्यूत थी। राम एवं कृष्ण जनता की समस्त ऐहिक एवं आमुष्मिक कामनाओं की पूर्ति के केन्द्र थे। वे दशरथनन्दन, नन्दनन्दन के रूप में उनके मानवकोटिक बन्धु भी थे और विष्णु-अवतार होने के कारण भुक्ति-मुक्ति प्रदाता परमेश्वर भी।

बौद्धों एवं जैनों ने भगवान् राम एवं कृष्ण के इन सुप्रतिष्ठित प्रतिबिम्बों को खण्डित करने का अभियान चलाया। शासन-संरक्षण के कारण वे किसी सीमा तक सफल भी हुए। उन्हें यह विश्वास था कि 'राम एवं कृष्ण के परमेश्वरविग्रह को खण्डित किये बिना, अपने सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार करना अथवा लोकमानस में उसे प्रतिष्ठित कर पाना संभव नहीं होगा।' फलतः बौद्ध एवं जैन साहित्यकार भगवान् राम एवं कृष्ण को नाना प्रकार के दुर्गुणों से बोझिल एक 'सामान्य मानव' मात्र सिद्ध करने में जुट गये।

पवित्र रामकथा की ये विकृतियाँ हमें बौद्ध *दशरथ जातक* में सर्वप्रथम मिलती हैं। इसमें राम एवं लक्ष्मण को उपहासात्मक स्वर में (?) रामपण्डित, लक्खणपण्डित बताते हुए राम एवं सीता को भाई-बहन कहा गया है और अन्ततः दोनों का विवाह भी दिखाया गया है। भाई और बहन के विवाह की परिकल्पना बौद्धों की विकृत मानसिकता की पराकाष्ठा को संकेतित करती है। ऐसा थो असभ्य एवं बर्बर जंगली जनजातियों में भी नहीं होता। कुछ और भी जातकों में विकृति का यही स्वर देखने को मिलता है।

जैन साहित्यकार इस दिशा में बौद्धों से भी आगे रहे। **भद्रबाहु** प्रणीत *आदिपुराण*, **रविषेण**-प्रणीत *पद्मचरित* तथा **स्वयम्भू** प्रणीत *पद्मचरित* में मर्यादापुरुषोत्तम राम की यावच्छक्य चरित्रिक अवमानना की गई। **स्वयम्भू** ने तो लक्ष्मण को राम के ऊपर प्रतिष्ठित किया और हजारों रमणियों के साथ भोगासक्त अन्यायी

राम को अन्ततः नरकगामी निरूपित किया। जाने कितनी बे-सिरपैर की दत्त कथाएँ इन अवैदिक साहित्यकारों ने गढ़ीं और उन्हें अपनी रामकथा में मिला लिया। शम्बूक-प्रसंग, सीता का निर्वासन तथा राम द्वारा कुत्ते की शिकायत पर याज्ञिक द्विज को मठाधीश बनने का शाप (दण्ड) आदि घटनाएँ—इन्हीं विकृतपोषक जैनकवियों की देन हैं जिन्हें आज वाल्मीकीय रामकथा से पृथक् कर पाना कठिन हो गया है।

इस प्रकार रामकथा की दो धाराएँ समानान्तर रूप से पल्लवित होती रहीं :

१. रामकथा की वैदिक-परम्परा– जिसका मूलस्रोत है **प्राचेतस आदिकवि वाल्मीकि**-प्रणीत षट्[१] काण्डीय *पौलस्त्यवध्म* काव्य,[२] जो रामायण के रूप में प्रख्यात है। इस परम्परा के राम मर्यादापुरुषोत्तम, करुणावरुणालय महामानव होते हुए भी वैष्णवतेज-सम्पन्न हैं तथा ईश्वरावतार हैं।

२. रामकथा की अ-वैदिक परम्परा– जिसका मूल स्रोत *बौद्ध जातक* एवं *भद्रबाहु* आदि जैन कवियों के काव्य हैं। इस परम्परा के राम एक विवादास्पद सामान्य मानव हैं जो संघर्षों के निकष पर कभी खरे तो कभी खोटे सिद्ध होते हैं। फिलहाल, यह राम कथमपि लोकनायक अथवा मर्यादापुरुषोत्तम बनने की क्षमता नहीं रखते।

बृहत्तरभारतीय भूखण्डों में स्थापित शासनतंत्र या तो बौद्ध धर्म के अनुयायी रहे या फिर शैव एवं वैष्णव धर्म के ! चम्पा के शासक निरन्तर शिवोपासक रहे। ईशानभद्रेश्वर उनके राजकुलसमर्पित आराध्यदेव रहे। इसके विपरीत, कम्बज के शासक परम वैष्णव थे, जिसका साक्षी है अंकोरवाट का बृहत्काय विष्णुमन्दिर ! लाओस, थाईलैण्ड (द्वारावती, सुखोदय आदि) सुवर्णभूमि (वर्मा) श्रीविजय (सुमात्रा)

---

१. चतुर्विंशत्सहस्राणि श्लोकानामुक्तवानृषिः।
तथा सर्गशतान् पञ्च षट् काण्डानि (तथोत्तरम्) ॥ रामा० बाल० ४.२.

२. काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत्।
पौलस्त्यवधमित्येवं चकार चरितव्रतः ॥ रामा० बाल० ४.७.

तथा कटाह (मलेशिया) के शासक प्रायेण बौद्धमतावलम्बी रहे। सिंहलद्वीप में तो बौद्धमत की प्रतिष्ठा **सम्राट् अशोक** ने स्वयं कराई थी, **राजकुमार महेन्द्र** एवं **राजकुमारी संघमित्रा** के नेतृत्व में।

सुवर्णद्वीप (जावा तथा बाली) की स्थिति थोड़ी भिन्न रही। यहाँ धार्मिक-सहिष्णुता पराकाष्ठा पर थी। एक ही वंश में पिता परम वैष्णव है तो पुत्र परम शैव अथवा बौद्ध मतरामवंशी अधिकांश नरेश विष्णु एवं शिव के उपासक रहे। **सम्राट् एरलंग** तो विष्णु का अवतार ही माना जाता था। अपनी दोनों रानियों के साथ वह अपनी मुद्राओं में लक्ष्मीयुगल के बीच आसीन विष्णु के रूप में प्रदर्शित किया गया है। **सम्राट् कृतनगर** बौद्ध सुभूतितंत्र का महान् अध्येता एवं वज्रयानी तांत्रिक था। उसने **शिवबुद्ध** नामक एक मत भी प्रवर्तित किया तथा स्वयं को इसी रूप में प्रतिष्ठित किया। **हरि-हर** की ही तरह **शिवबुद्ध** की असंख्य पाषाण, कांस्य एवं सुवर्ण मूर्तियाँ आज भी जावा के संग्रहालयों में सुरक्षित हैं।

इस प्रकार जिन-जिन क्षेत्रों में बौद्ध धर्म (प्रारंभ अथवा बाद में) प्रभावी रहा वहाँ 'अवैदिक परम्परा' वाली विकृत रामकथा ही प्रचलित हुई। सिंहल (रामकेति) थाईलैण्ड (रामकियेन) लाओस (फा लॉक का लॉय) मलेशिया (हिकायत महाराजा सेरि राम) तथा वर्मा आदि की रामकथाएँ इसी कोटि की है। यहाँ अवसर नहीं है कि इन सन्दर्भों की सप्रमाण समीक्षा की जाय परन्तु यह सत्य है कि ये रामकथाएँ 'भदेस' अधिक हैं, रामकथा कम०[१]

(क) अभिनव चरितसर्जन

सुवर्णद्वीपीय रामकथा (रामायणककविन्) का सर्वोत्तम वैशिष्ट्य यही है कि समूचे बृहत्तर भारतीय उपनिवेशों में एक मात्र वही रामकथा की वैदिक अथवा अविकृत परम्परा की अनुगामिनी है। *रामायणककविन्* का प्रणयन मात्र *वाल्मीकि-रामायण* एवं *भट्टिकाव्य* के आधार पर किया गया है। यद्यपि **महाकवि योगीश्वर**

१. सविस्तर द्रष्टव्य : लाओस की रामकथा, श्रीमती कमला रत्नम्।

ने भी यत्र-तत्र परिवर्तन किये हैं, परन्तु उनसे मूलकथा में कोई 'विकृति' नहीं आती प्रत्युत उसकी रसवत्ता और बढ़ जाती है । त्रिजटा को वैदेही की समवयस्का कल्पित करना एक ऐसा ही सरस काव्य सन्दर्भ है । एक युवती दूसरी युवती का व्यथा का जैसा प्रगाढ अनुभव कर सकती है, वह अनुभव संभवत: (वाल्मीकि रामायण की) वृद्धा त्रिजटा के लिये असंभव था । अत: **महाकवि योगीश्वर** की यह परिकल्पना, विरहविधुरा वैदेही के सन्दर्भ में अत्यन्त मार्मिक प्रतीत होती है । समवयस्कता से ही उपजी सहानुभूति ने, विभीषणपुत्री त्रिजटा को (मेघनाद द्वारा राम को नागपाश में संयत कर देने के अवसर पर) सीता के साथ ही प्राणत्याग कर देने के लिए उद्यत किया था—

नहनिकन त दोङ्कु वेक् परङ्के
कित तत किङ्किङ यन् पिजह् अनक्त ।
मतुरुनपुयुमिल्व मात्य ताकुं
जनकसुता दुलुरङ्क्व तत् कसाह ॥

—रामा० कक० २१.६१

यह **महाकवि योगीश्वर** की 'अभिनव चरित-सर्जना' का एक भव्य उदाहरण है । **वाल्मीकि** एव **भट्टि** से प्रतिपद अनुप्राणित होते हुए भी योगीश्वर अपने पात्रों को **यथाऽस्मै रोचते** के अनुकूल ही गढ़ते हैं ।

सीता और त्रिजटा का सख्यभाव नीरक्षीरवत् है । त्रिजटा स्वयं को वैदेही में विलीन मानती है । वह उनके अभाव में एक भी क्षण जीवित नहीं रहना चाहती । नागपाश में जकड़े राघव को देखते ही सीता जब मूर्च्छित हो उठती हैं तो मानो त्रिजटा की कामनाओं का संसार ही दग्ध हो उठता है । उसकी जिजीविषा ही समाप्त हो जाती है और वह परमेश्वर से प्रार्थना करती है—

भटार ! तासिहप्व तसौ तुलुङ्ङहुलुङ्
निहन् सिरश्रीजनकात्मजात् हुरिप् ।

सिर प्रसादङ्कु त रुग् वडुन् मुवह्
हिलङ् प्रकहता वरिडिङ्कु यन्तय॥

—रामा० कंक० २१.४०

'हे परमेश्वर ! दया करो । सहायता के लिए आगे आओ प्रभो ! जनकात्मजा का जीवन लौटा दो प्रभो । वह मेरा 'पूजागृह' है, जो ध्वस्त हो गया है । उसे पुनः निर्मित कर दो । प्रभो ! यदि वह दिवंगत हो गई तो मेरा कल्पवृक्ष ही भिन्न-भिन्न एवं विनष्ट हो जायेगा ।'

वाल्मीकि के विभीषण, रावण द्वारा अपमानित एक असहाय प्राणी हैं । वह राम के शरणागत हैं तथा राम के प्रति अतिशय निष्ठावान् एवं समर्पित भी । परन्तु राम के साथ उनका सम्बन्ध 'प्रतिष्ठित सख्य' स्तर का है, सेवक-स्तर का नहीं । राम भी आवश्यकता पड़ने पर, विभीषण से देशकालोचित मंत्रणाएँ लेते हैं क्योंकि उनकी दृष्टि में विभीषण अत्यन्त परिपक्व बुद्धि के अनुभवी राजनयिक हैं ।

योगीश्वर ने विभीषण के व्यक्तित्व में भी प्रभूत परिवर्तन किया है । वह 'सखा एवं अनन्यशरण सेवक' के समन्वित रूप हैं । त्रिजटा की ही तरह वह भी राम के अभाव में जीवन की कल्पना तक नहीं करते । राम के प्रति उनकी भगवद्दृष्टि हैं—

सिर मर पुरुषोत्तमांश मावान्
निपुण पिनण्डित रिङ्ङि सिरात् रिङ्ख!!

त्रिजटा को सान्त्वना देते हुए विभीषण कहते हैं—बेटी ! शरीर विषयक साहस (चितारोहण) करने से देवी को रोक । यदि वह प्राण दे देती है तो नरेन्द्र राघव अत्यन्त विषम हो जायेंगे, और यदि देवी के वियोग में नृपति, का प्राणान्त हो गया तो संसार में प्रलय आ जायेगी । मैं स्वयं आत्मघात कर लूंगा, यदि प्रभु राम नहीं रहे तो !

उहुति त सिर साहसेङ् शरीर
विषम नरेन्द्र यदिन् पिजह् सुदेवी।

इ पति नृपति तन् हना इकेङ्रात्
अकु तुवि मात्य यदिन्तया नरेन्द्र॥ रामा० कक० २१.६७

वानरराज वाली एवं सुग्रीव के बन्धुत्व का जो मार्मिक रूप **योगीश्वर** ने उद्घाटित किया है उसकी एक झलक पहले हम दे चुके हैं। उससे अधिक समीक्षा का अवसर यहाँ नहीं है।

रामायणककविन् के राम महामानव के रूप में सकलगुणाधिष्ठान हैं। वह क्षमाशील, मित्रवत्सल, बन्धुप्रणयी, सेवकानुकम्पी तथा प्रियाप्राण हैं। अनुकूल स्थितियों में वह जितने ही कुसुमसुकुमार हैं विपरीत स्थिति में उतने ही कुलिश कठोर!

राम रूपसौन्दर्य की साकार प्रतिमा हैं। लक्ष्मण के साथ उन्हें देख, मिथिला-वासियों को भ्रम होता है कि 'ये दोनों कहीं अश्विनीकुमार तो नहीं हैं? या फिर वसन्त से अनुगत कामदेव! कितना भव्य व्यक्तित्व है! चेष्टाएँ तथा सुन्दर लक्षणों से युक्त कैसी रूपसम्पत् है! लगता है, साक्षात् भगवान् त्रिविक्रम ही उपस्थित हो गये हैं।'

ह्यङ्ङश्विनो सिर कुनङ् उमहस् मरङ्के
ह्यङ् कामदेव त कुनङ् मदुलुर्वसन्त।
आकार इङ्गित सुलक्षण रूप सम्पत्
सङ् ह्यङ् त्रिबिक्रम कुनङ् उमहा कतोन॥

—रामा० कक० २.५५

वह पितृवशंवद हैं। पुरवासियों को समझाते हुए वह कहते हैं कि 'पुत्र को धराधाम पर लाने वाला पिता ही है। वही पुत्र को शिक्षा देता है कि उत्तर कौन है? दक्षिण कौन है?...पिता की आज्ञा का उल्लंघन करने की अपेक्षा मैं मृत्यु का वरण कर लेना श्रेयस्कर मानता हूं (रामा० कक० ३.१२)।

राम नीतिशास्त्र के पारंगत मनीषी हैं। कुमार भरत को दिया गया उनका उपदेश नाना शास्त्रों की देशनाओं से युक्त तथा दृष्टान्त बहुल हैं। इस सन्दर्भ में

योगीश्वर पूर्णत: मौलिक हैं तथा अपने युग का सम्पूर्ण नीति एवं धर्मशास्त्र राम के मुंह से प्रकट करा देतै हैं। चित्रकूट में राम की वनचर्या का भी अत्यन्त हृदयग्राही तथा सूक्ष्म वर्णन **योगीश्वर** ने किया है। उन्हें एक मात्र चिन्ता थी महामुनियों के सुख-दु:ख की ! उनका चित्त निरन्तर परोपकार में लीन रहता था। अपने कष्टों की तो उन्हें सुध तक नहीं थी—

सलवस् निरसंगुरिङ्डलस तमतन् लेन् इनङ्निङिनिर।
सुक दु:क निरङ् महामुनि य विनिन्ता विनिवेक रिङ् हति॥
सफलार्विक सङ् रघूत्तम इकनङ् वित्त परार्थ केवल।
तरुपेक्ष लर न्यवक् निर प्रिहतह् कार्य निरङ् महामुनि॥

—रामा० कक० ४.२३, २४

राम स्वजनवत्सल हैं। रणभूमि में, नागपाश की यंत्रणा भोगते हुए जब उनकी चेतना लौटती है तो वह रो पड़ते हैं अपने एक-एक सहचर के लिये। अपने कारण सिरजी गई सहचरों की विपत्ति सहृदय राम को उभ्रान्त बना देती है। वह करुणा, ममता, आत्मकदर्शना एवं परदु:खकातरता से एक ही साथ जकड़ उठते हैं।

लक्ष्मण के लिये राम का परिदेवन कवि ने १० मार्मिक श्लोकों में व्यक्त किया है। ऐसा करुण, मर्मन्तुद, आत्मीयतापूर्ण तथा विस्तृत रोदन तो *वाल्मीकिरामायण* में भी नहीं है। यह **योगीश्वर** की नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा का मौलिक परिपाक है। राम कहतै हैं:

मेरे छोटे भैया लक्ष्मण ! तुमने मात्र मेरे कारण शीत, घाम, सन्ताप (ज्वर) क्षुधा एवं थकान सही। आह मेरे अनुज ! तुमने परिपूर्ण भक्तिनिष्ठा के अन्वेषण में अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। मैं तुम्हें भोगमय जीवन दे पाता, उसकी तो बात ही छोड़ो। मैं तुम्हारी मृत्यु का कारण भूत हूं। धिक्कार है मुझे, जिसका कि जीवन ही पाप एवं कृतघ्नता से ओतप्रोत है। क्योंकि मेरे कारण मनस्वी व्यक्तियों के जीवन का अन्त हो रहा है। मैंने त्रैलोक्य में तुम्हारा कोई समानधर्म व्यक्ति नहीं देखा है। तुम जैसा धीर, वीर, विरत (माया-मोहरहित) शान्त-हृदय,

प्राज्ञ, सात्त्विक, गुणज्ञ, सुशील, दक्ष, दान्त, मृदु, आर्जवशील एवं सत्यनिष्ठ दूसरा कोई नहीं है । मेरे भैया ! तुम्हारे गुण अनन्त हैं ।[१]

'प्रिय तात ! मेरी यही प्रार्थना है कि भविष्य में जब कभी भी हम पुनः जन्म लें तो हम दोनों पुनः सहोदर ही हों, एक-दूसरे से पृथक् न हों । ईश्वर करे, तब तुम मेरे अग्रज होओ और मैं तुम्हारा अनुज ! तब मैं तुम्हारी उदारताओं का मूल्य चुकाने के लिये स्वयं को समर्पित कर सकूंगा:'

प्रार्थनाङ्कवरि मतङ्ददि य मुवह्
सानकात कित हय्व त मपसह्।
न्दन् कितात मतुहा अकु ररय
भक्त्य ताकु रिकितामलिस् गुण॥

—रामा० क क० २१.९७

शरणागत विभीणष की रक्षा न कर पाने के लिए राघव असीम यंत्रणा का अनुभव करते हैं । आत्मभर्त्सना करते-करते, अन्ततः वह विवश होकर नियतिवादी बन जाते हैं:

व्रुह् किताञ्चल इकङ् मतिमु-तिमु
न्याङ् हुरिप् तुवि लवन् सुक सकऋङ्।
र्य्यक् किलत्य उपमा निकनडिनक्
रिङ् हिङ पड लवन् तुरगगति॥ २१.१०३

विभीषण ! तुम जानते हो कि संयोग शाश्वत नहीं होता । जीवन तथा सुख भी क्षणस्थायी ही हैं । सौभाग्य जल के फेन की तरह क्षणभंगुर है अथवा विद्युदुन्मेष जैसा है । तुरगगति की तरह यह (देखते ही देखते) सरपट भाग निकलता है ।

योगीश्वर की 'अभिनव चरित सर्जना' का यह सन्दर्भ अत्यन्त सायाम है । अपनी चतुरस्त क्रान्त प्रतिभा के कारण वह कहीं भी भारतीय रामकथाकारों के

---

१. द्रष्टव्य: रामायणककविन् २१.८८-९४ तक ।

'अधमर्ण' नहीं सिद्ध होते हैं। यदि इसे अतिश्योक्ति न माना जाय तो कहूंगा कि इस कालजयी कवि ने कथा की मौलिकता एवं चरिताङ्कन की स्वोपज्ञता में समस्त भारतीय कवियों को पीछे छोड़ दिया है।

(ख) भावयित्री प्रतिभा का परिपाक

सुवर्णद्वीपीय रामकथा का दूसरा वैशिष्ट्य है योगीश्वर की भावयित्री प्रतिभा का परिपाक! **आचार्य आनन्दवर्धन** ने ठीक ही कहा है—**न काव्यार्थविरामोऽस्ति यदि स्यात्प्रतिभागुणः** (ध्वन्या० ४.६) इस विलक्षण प्रतिभा के ही कारण कवि लोकोत्तर भावनाओं में प्रवृत्त हो पाता है।

आदिकवि वाल्मीकि से लेकर अद्यावधि प्रणीत भारतीय रामकथाओं में सर्वत्र यही वर्णन है कि लंकादाह के अनन्तर मारुति राघव के लिये सीता का मार्मिक सन्देश एवं चूडामणि लेकर लौटे। परन्तु **योगीश्वर** के मारुति चूडामणि के साथ ही साथ देवी जनकजा का एक लम्बा मार्मिक पत्र लेकर लौटते हैं। यह पत्र **योगीश्वर** की भावयित्री प्रतिभा का चिरन्तन साक्ष्य है। यह पत्र रुक्मिणी (श्रीमद्भागवत) तथा शकुन्तला (अभिज्ञानशाकुन्तल अंक ३.१३) द्वारा द्वारकाधीश कृष्ण एवं महाराज दुष्यन्त को लिखे गये पत्रों से भी कहीं उत्कृष्ट है। इन पत्रों में आकांक्षित भोग-सुख की प्रस्तावना का स्वर है। पुनश्च, ये पत्र कुमारियों के हैं।

परन्तु वैदेही के पत्र में एक पतिव्रता रमणी का अवमानना एवं विरहव्यथापूर्ण क्रन्दन है। जगद्विजयी पति की शीलवती भार्या की असीम पीड़ा है, अनुभूत दाम्पत्यसुख की हृदयदाही संस्मृतियों की पीड़ा है। यह पत्र विश्वसाहित्य के गिने-चुने पत्रों में 'एक' माना जाने योग्य है।

वैदेही का यह मार्मिक पत्र लम्बा है (रामा० कक० ११-२२-३२ तक) जिसका सारांश इस प्रकार है:

"हे आर्यपुत्र! हे स्वामी! आपके चरणयुगल में अर्पित है मेरा प्रणाम। कृपया इस पत्र को बाँचें। इसमें उत्कीर्ण शब्द मेरी हृदयानुभूतियों के प्रतीक हैं। इस

चूडामणि को भी प्रणामार्थ उपस्थित सीता ही समझें । हे नरेन्द्र ! आप द्वारा प्रेषित मुद्रिका भी मेरे लिये, आपके प्रगाढालिङ्गनों के तुल्य है । (११. २२)"

"जब मैं उस मुद्रिका को निहारती हूं तो मेरा हृदय प्रणय-वियोग की कथाओं से, उत्कण्ठाओं से उद्‌भ्रान्त हो उठता है क्योंकि मैं आपको प्रत्यक्ष देख नहीं सकती । आह भूपति राम ! आप मेरे करुणक्रन्दनों को सुनें, मेरी असीम निष्ठा एवं भक्ति को देखें, क्योंकि आपके अतिरिक्त और कोई मेरा अभीष्ट नहीं है । हे स्वामी ! सप्त जन्मान्तर तक मैं केवल आपकी परिचर्या करूंगी । (११.२३) जो कुछ भी पहले (संयोग में) रसमय था (वियोग में) नीरस लगने लगा । पुष्पभार से बोझिल उपवन भी मेरी वियोगकथा का निदान नहीं था...जल तक मेरे कण्ठ में नहीं उतर पाता था (११.२५) ।"

"हे नरेन्द्र ! आप मेरे लिये अत्यधिक सन्तप्त न हों । अपने विशुद्ध मन से शोक निकाल दें । मैंने यही समझा है कि निस्सीम व्यथा निरर्थक एवं निष्प्रयोजन होती है... (११.२६) ।"

२७, २८ वें पद्यों में सीता राघव के कन्दर्पजयी रूपसौन्दर्य, उनके इन्द्राणी एवं शची शास्त्र-पाण्डित्य तथा शौर्य-पराक्रम की प्रशंसा लिखती हैं । आगे वह पुनः लिखती हैं:

"हे नरेन्द्र ! मेरे जीवित रहते आप शीघ्रातिशीघ्र आ जायँ । विलम्ब न करें नाथ ! रावण अत्यन्त मूढ है । धर्मदेशना के विषय में वह कभी नहीं सोचता है । वह मदिरोन्मत्त तथा हर अच्छी वस्तु के प्रति निष्ठाविहीन है । आप व्यथित न हों, यह न सोचें कि आप अपने अभियान में सिद्धि नहीं प्राप्त करेंगे । समस्त वानरयूथपों की शक्ति का सदुपयोग करें, क्योंकि वे युद्धकला में अद्‌भुत हैं (११.२९) ।"

"यदि आप प्रभूत विलम्ब से आयेंगे मेरे पास, तो क्या होगा ! शत्रुगृह में रहने से उत्पन्न मेरी यंत्रणाएँ, मेरी अनन्त कथाओं को जन्म दे रही हैं । आपके अभिनन्दनार्थ मेरे पास बस उत्कण्ठाएँ तथा कथाएँ ही हैं, और हैं आँसू, जो सौभाग्यवश अभी भी बच रहे हैं (११.३०) ।"

"जो बात मुझे सर्वाधिक यंत्रणा देती है वह यह कि इस सारे दुर्भाग्य का मूल मात्र मैं हूं (११.३१) यदि आप मेरी सुधि नहीं लेते तो मैं नहीं जानती कि मुझे क्या कहना चाहिये। इसलिए हे नरेन्द्र ! आप शीघ्रातिंशीघ्र आ जांय (११.३२)।"

राम सीता का पत्र पढ़ते हैं पूर्ण तन्मयता से। वह असीम अनुराग, करुणा एवं दुर्वार उत्कण्ठा के कारण अभिभूत हो उठते हैं। उन्हें लगता है मानो देवी सीता ही उनके पास खड़ी होकर वह व्यथाकथा सुना रही हैं। आँखों से अष्टिलाश्रुधारा बह निकलती है और वैदेहीविलीन राघव को इतना तक भाव नहीं होता कि आँसू पत्रलेख पर ही गिर रहे हैं।

रह जाता है उनके हाथ में सफेद कागज का टुकड़ा। आँसुओं में बह गया है देवी सीता का मर्मच्छेदी सन्देश ! चेतना लौटती है और राम विक्षिप्त से हो उठते हैं। वह बच्चों की तरह गला फाड़ कर रोने लगते हैं मारुति और लक्ष्मण की दुहाई देकर—"मारुति ! भैया लक्ष्मण ! संभालो मुझे ! यह पत्रलेख तो देखो तुम लोग। हाय, यह तो धुल गया। अधिकांश पढ़ने योग्य नहीं रह गया ! अब मैं क्या करूं ? प्रिया के अक्षरों को कहाँ से लाई ? आह ! व्यथाभार से सन्तप्त मुझे कुछ ध्यान नहीं रहा। यह भी नहीं जान सका कि पत्र में आगे क्या लिखा था ? हाय रे दुर्भाग्य !"

ऐ सङ् मारुति ! तोस्तुलुङ्ङकुतसौ सङ् लक्ष्मणादिर्वुलत्
न्दह् तोन्तोन्त इकेङ् तुलिस् हन लिब्रद् मक्वेह् सुरुद् तन्कतोन्।
हाह् तग्ब्रुह् अपरन्नुनिन्य तकुनिङ् संके लरन्याक् हिडिप्
धू द्यातह् करिका कुनिङ् हमिङ्ङ् रेकान् सुसुक् रिङ् हति॥

—रामा० कक० ११.३४

वैदेही का यह पत्र **महाकवि योगीश्वर** की 'प्रकरणवझता' का एक अभिराम उदाहरण है। ऐसी ही मौलिक उद्भावनाएँ हम ककविन् के अन्य कथांशों में भी पाते हैं, जिनका एक स्वतंत्र अध्ययन करने की आवश्यकता है। जिन दिनों मैं बालीद्वीप में था, महाविदुषी आदरणीया **कमलरत्नम् जी** ने, अपने प्रथम पत्र में ही, देवी सीता के इसी पत्र की स्मृति दिलाई थी और इसका मूलपाठ भेजने को कहा

था। इस पत्र की विस्तृत समीक्षा करते हुए आज, रामकथामर्मज्ञा उस दिवंगता विदुषी के प्रति श्रद्धावनत हो रहा हूं।

(ग) शास्त्रप्रतिभा की विपुलता

सुवर्णद्वीपीय रामकथा का तीसरा वैशिष्ट्य है। **योगीश्वर**, आजीवन ब्रह्मचारी रहे। यह तथ्य वह स्वयमेव बड़ी ईमानदारी से स्वीकार करते हैं—राम और सीता के (लंकाविजयानन्तर) भोगवर्णन-सदर्भ में:

सङ् रासिकात रसिकान् रूमसे रसंका
तन् ब्रुह् ङ्हुलुन तुन तिमिन् रिकनक्षमाकिन्।
वात्स्यायनाणि मदनोदय सन्धिसूत्र
ङ्काभ्यास देन्त य षड्ब्रुह रिङ् रसङ्क॥

—रामा० कक० २६.३५

"अर्थात् उस अनिर्वचनीय प्रणयानन्द की अनुभूति केवल वे ही (राम एवं सीता) कह सके होंगे, मैं नहीं! (अत: कैसे बताऊँ कि वह कामसुख कैसा रहा होगा?) वात्स्यायन सूत्रों, मदनोदय रहस्यों तथा सन्धिसूत्रों से सर्वथा अनभिज्ञ होने के कारण, पाठकगण कृपया मुझे क्षमा करेंगे। यदि आपने इन रतिशास्त्रीय ग्रंथों का अभ्यास किया होगा तो उस रस की अनुभूति करने में समर्थ होंगे॥"

इस प्रकार **योगीश्वर** स्वयं को कामशास्त्राऽनभिज्ञ बताते हैं अनुभव के स्तर पर! परन्तु पारंगत हैं वह कामशास्त्र में भी। रावण के अन्त:पुर का जैसा उन्मुक्त भोगवर्णन उन्होंने किया है, वह बिना ठोस कामशास्त्रीय अनुशीलन के, नहीं ही लिखा जा सकता।

धर्मशास्त्र एवं नीतिशास्त्र में उनकी अप्रतिहत गति है। राम द्वारा भरत को तथा विभीषण द्वारा रावण को दी गई देशनाओं में कवि का यह शास्त्रीय पाण्डित्य प्रकट होता है। वह *मनुस्मृति, कामन्दक, शुक्रनीति, कुटारमानव* तथा *पाञ्जी* आदि के गहन अध्येता है। इस सन्दर्भ की किञ्चित् समीक्षा *रामायण ककविन्* के परिचय-प्रसंग में, पहले भी की जा चुकी है।

योगीश्वर की अलंकारशास्त्रीय दक्षता तो सर्वोपरि है । वह **बाणभट्ट** की ही तरह 'वश्यवाणी चक्रवर्ती' है । भाषा मानो उनकी बेटी है । नूतनाभिप्राय मानो उनके वशंवद सेवक है । संस्कृत-जावी मिश्रित एक नवप्रतिष्ठित भाषा में भी, अलंकृत शैला के संस्कृत महाकृतियों जैसी अलंकारच्छटा प्रदर्शित कर वह व्यामोहित कर लेते हैं । अनुप्रास, यमक तथा चित्रकविता के वह सिद्ध आचार्य हैं । कुछ निदर्शनों से इसकी पुष्टि करना चाहूंगा । प्रसंग लंकाविजयहेतु राघव के प्रस्थान का है ।

सागरतट पर समान ऊँचाई के दो पर्वत खड़े थे । वे परस्पर सटे थे, सर्वथा समरूप थे और देवीं पृथ्वी के युगल पयोधर प्रतीत होते थे । उत्प्रेक्षालंकार का यह रम्य उदाहरण है:

हन त य पर्वत मुङग्वि तिपि न्य
पड त रुहुर्न्य कलिह्य सुमडिङ् ।
सम-सम गौड्न्य विलु न्य व सम्पत्
कदि सुसु निङ् पृथिवी जुग बिन्तर ॥ ११.७२

रूपक का एक मनोरम उदाहरण बरबस चित्त को बाँध लेता है: 'नभस्तल एक युवती कन्या के समान था । मुक्ताहार जैसे नक्षत्रपुञ्ज उसकी करधनी थे और महेन्द्रपर्वत उसका अभिलाषक् (प्रणसी) था । इसी कारण वह आकाश तक पहुंचने के प्रयास में ऊँचाई तक फैला हुआ था ।'

कन्या मुडा तुल्य निकङ् नभस्तल
किण्डिल्य तङ् विन्तङकित् मणिक् तिन् ।
य तेक कह्युन् इकनङ् गुनुङ् कुनिङ्
मतङ्न्य मावान् दुमुदुग् तिकेङ् लडित् ॥ ११.५४

चतुष्पाद यमक का एक सौन्दर्य कवि भाषा में द्रष्टव्य है । पशुओं की विवशता तथा यंत्रणा का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि पशु बेचारे सारी यंत्रणा सहते हुए भी सुख नहीं पाते !

पशु पसुसुपनिङ् लरातिभार
पिनलु लुमक्वकिनङ्मिनाण्डभारा

उगुडन गुगुलुडन् लिपित् सभार
सुक सकुतिक्य पिनेत्य तन् सभार॥ २५.११०

संस्कृत अलंकाशास्त्रियों द्वारा एकावली अलंकार के निदर्शन रूप में प्रायशः उद्धृत भट्टिकाव्य का **न तज्जलं यन्न सुचारपङ्कजम्** आदि पद्य उसी विच्छित्ति के साथ **योगीश्वर** द्वारा उपन्यस्त किया गया है—

सक्वेह् निकड्तलग तन्हन तन्पतुञ्जुङ्
तुञ्जुड्न्य तन्हन कुरङ् पदमेसि कुम्बङ्।
कुम्बड्न्य कप्व मुनि तन्हन तन् पशब्द
शब्दन्य कर्णसुक तन्हन तन् मनोज्ञ॥ २.१९

अनुप्रास की छटा तो पदे-पदे देखती ही बनती है। राम द्वारा, सागर पर शरसन्धान तथा युद्धप्रसंगों में **योगीश्वर** ने अद्भुत सानुप्रास पदावली का प्रयोग किया है। राक्षस-वानरयुद्ध का एक वर्णन द्रष्टव्य है शार्दूलविक्रीडित छन्द में !

तत्कालान् कसुरुड्कत्व्य कसिसिर् सोर शीर्ण तङ् वानर
कोम्बक् काम्बहकिक तिकङ् व्रयडिमित् कान्तिप् कतुण्डुङ् वनेह।
महयाङ् राक्षस रिङ्डल्लस्य ममलिस् गूत्गूतिनह्नक् हुमौङ्
मोङ् तुल्य न्य ममोन किडड्य मडुसी मस्तीय मोलिह् हुलु॥

—रामा० क्क० १९.८६

(घ) लोकाभिव्यक्ति

वस्तुतः *रामायणककविन्* भारतीय तथा सुवर्णद्वीपीय हिन्दू संस्कृतियों की संगमस्थली है। मूलकथानक भारतवर्ष का, और उसकी अन्विति हो रही है हजारों मील दूर, सागर के वक्ष पर उभरे यवद्वीप में। और अन्विति एक ऐसे कवि द्वारा जिसने कभी भारत को प्रत्यक्ष देखा नहीं। भारतीय रामकथा-घटनास्थलों के भूगोल से वह परिचित नहीं। इसका परिणाम यह हुआ कि **महाकवि योगीश्वर** के ग्रंथ में

कथासूत्र तो भारत का है, परन्तु लोक की अभिव्यक्त यवद्वीप की है। राम-लक्ष्मण जिस मिथिला की यात्रा कर रहे हैं वह मिथिला यवद्वीपीय परिवेश की है। राम जिस सागर पर शरसन्धान करते हैं वह सागर यवद्वीप का है और कुमार भरत विजयी वानरसेना को भोज देते हैं वह भोज भी नवीं शती ई० के यवद्वीप का है।

इस प्रकार, *रामायणककविन्* में यवद्वीपीय पशुओं पक्षियों, वनस्पतियों, व्यञ्जनों-पकवानों तथा आचार-व्यवहारों का अत्यन्त हृदयावर्जक वर्णन प्राप्त होता है। मेरी दृष्टि में यवद्वीपीय लोकाभिव्यक्ति भी सुवर्णद्वीपीय रामकथा का एक महत्त्वपूर्ण वैशिष्ट्य है। इस मानक कृति को आधार बनाकर भारत एवं यवद्वीप की प्राचीन संस्कृतियों का रोचक तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

क्रोधाविष्ट राघव द्वारा सागर पर अग्निबाण का संधान करते ही सागरजल उबलने लगा। चित्र-विचित्र प्रजाति के मत्स्यकुटुम्बों में हड़कम्प मच गया। कौन मत्स्य अथवा प्रजाति के मत्स्य अथवा समुद्री जीव उस समय किस स्थिति में था और खौलते जल में उसकी क्या दुर्दशा हुई—इसका अत्यन्त हृदयग्राही वर्णन **योगीश्वर** करते हैं। मत्स्यप्रजातिविषयक कवि का ज्ञान (लोकपरिचय) तो विलक्षण है। **योगीश्वर** जिन मत्स्यों का परिचय देते हैं उनके नाम हैं—तिमिङ्गिल, लुम्बलुम्ब, बुन्तिक, तुलि, बाङ्लुस, पिसुत, मकरादुलुर (घोंघे), इवक् लिमन् (ह्वेल), ककप्, कदिवस्, कदवस्, बलनक्, बहिस्, डुयुङ्, पेनु (कच्छप), गितिम, लयर, उवुर, पिलुङ्लुङ्, जलुङ्-जलुङ्, अवन्, गिलिङ्-गिलिङ् (कुल २३ प्रजातियाँ)

—रामा० कक० १५.१९-२८

इसी प्रकार सुवेल पर्वत, लंकापुरी तथा अयोध्या के उपवन-वर्णन में भी **योगीश्वर** यवद्वीप की सारी वनस्पतियों तथा पशु-पक्षियों का वर्णन कर डालते हैं बिना यह चिन्ता किये कि भारत की अयोध्या में वे पक्षी होते भी हैं या नहीं ?

सरयूजल में विहार करते पक्षियों में कुछ तो हैं मनिङ्तङ्, जो टिट्टिभ जाति के हैं और क्रन्दन प्रवण हैं। लम्पिपिस नामक पक्षियों का ज़ोड़ा प्रेम का प्रतीक है (संभवत: यह चक्रवाक-मिथुन है) बलिविस् पक्षी को कवि लम्बी अवधि से शिकार की प्रतीक्षा में खड़ा चित्रित करता है। पिजत्-पिजत् पक्षी अपने बच्चों को चारा

चुगा रहे हैं तथा मङोल पक्षी अपनी देह को खुजलाने में व्यस्त हैं । तिलिगरन् पक्षी गाय की पीठ पर बैठ कर उसकी लीखें फोड़ने में लगे हैं । धनखर खेतों में पृङ्क् पक्षी विहार कर रहे हैं तता तोम्तोमन् पक्षी चौतरफा उड़ने कलरव कर रहे हैं । इसी प्रकार पुतिर, दुर्य्यश, क्वक्, कुवोङ्, लिङिस, बिसु, बिसि, दलुप, तम्बिङ्, स्वरी तथा श्वेत नामक पक्षियों का भी वर्णन कवि ने किया है ।

वनस्पतियों में **महाकवि योगीश्वर** ककुप, लिङिस, किप्रह (शाल्मली) कपोक, पवंगु (प्रियंगु ?) हण्डुरु, सिम्बुङ्, पुरिङ्, पुतत् नामक वृक्षों तथा वुङतलि, गडुङ आदि लताओं का वर्णन करते हैं । कुलुरक्, सरुणी, भङुनिङ्, शोक (अशोक ?) पडन्तन् तथा श्रीगडिङ् पुष्पों की मादक शोभा का वर्णन ककविन् में प्राप्त होता है । जंगित् पुष्पों से युवतियों ने केशपाश सज्जित कर रखे हैं । बकुङ्-पुष्प के सौरभ से सारा वातावरण महक उठा है । सम्बु-पुष्प भारावनत हो उठे हैं तथा लन्दिप पुष्पों की प्रतिप्रभा नेत्रों को बाँध रही है । मुख पुष्प का रंग भूरा है तो वुङ् तिलिङ् का काला । 'पति' नामक पुष्प श्वेत है तो करचुक् एवं त्रिकञ्चु-पुष्प सोने एवं चाँदी के रंग वाले हैं ।

पशुपक्षी एवं वनस्पति जगत् (Flora and Fauna) का यह वर्णन अत्यन्त विस्तृत होने के कारण अब यहीं स्थगित किया जाता है लोकचित्रण की दृष्टि से *रामायण ककविन्* **योगीश्वर**युगीन यवद्वीप का एक सांगोपांग दस्तावेज है । बृहत्तर भारत का अन्य कोई भी रामकथात्मक ग्रन्थ अपनी प्रसवभूमि का ऐसा सटीक रूपांकन तथा प्रतिनिधित्व नहीं कर पाता ।[१]

(ङ) राम एवं सीता का देवत्व

सुवर्णद्वीपीय रामकथा का अन्तिम वैशिष्ट्य है, राम एवं सीता के देवत्व की प्रतिष्ठा । यह सन्दर्भ ककविन् में बार-बार निरूपित हुआ है । रावण के ओछे प्रणय प्रस्ताव को ठुकराती हुई जनकनन्दिनी राम के विषय में कहती हैं—

---

१. सविस्तर द्रष्टव्य : रामायण ककविन् सर्ग २५

अप पङ् ऋङौमु ं इ सिरङ् रघूत्तम
तकरिन् सिरेकन धनुर्धरिङ् जगत्।
पुरुषोत्तमांश सिर देवमानुष
नियतात को पिजह दे निरेङ् रण॥ रामा० कक० ८.१३।

'हे रावण ! राजपुत्र रघूत्तम के विषय में भला तुम क्या जानते हो ? वह सच्चे अर्थों में पृथ्वी के धनुर्धरों में एकमात्र हैं। वह पुरुषोत्तम (परमेश्वर) के अवतार हैं, देवमानव हैं (सामान्य मानव नहीं) निश्चय ही समरभूमि में तुम उनके द्वारा मारे जाओगे।'

मेघनाद द्वारा बन्दी बनाए गए पवनात्मज भी रावण को राम एवं सीता का 'देवत्व' ही समझाते हैं 'भटार राम' एवं 'जनकसुत त तुल्य देवतान्त' शब्दों द्वारा (रामा० १०.६६-६७)

मेघनाद द्वारा नागपाश में बाँध लिये जाने पर भी ऋषिगण राघव को उनके मूलस्वरूप (विष्णुत्व) का स्मरण दिलाते हैं—

हे मधुसूदनाम्रिह भटार हरव मलुप
विष्णु अवक्त जाति पुरुषोत्तमोत्तम कित।

अर्थात् हे मधुसूदन ! कुछ करिये न। इतने विस्मृतिशील मत होइये प्रभो ! आप साक्षात् विष्णु हैं, श्रेष्ठ पुरुषोत्तम हैं (रामा० कक० २१.१२६)[१]

विविध पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त रघुनन्दन राम के वैष्णव विग्रह के प्रति **महाकवि योगीश्वर** अन्ततः स्वयं भी प्रतिश्रुत हो उठते हैं। उनकी दृष्टि में राम साक्षात् परमेश्वर ही हैं—मुक्ति प्रदाता !

जय परमेश्वरातिशय शक्ति नाथ निकनङ् जगत् त्रय कित
प्रणत हतिङ्कु नित्य रि सुकुन्त तातनलुपा लना मतुतुर।

---

१. रामावतार एवं कृष्णावतार के पौर्वापर्य से अनभिज्ञ योगीश्वर इसी सन्दर्भ में श्रीमद्भगवद्गीता का 'पश्य मे पार्थ रूपाणि' आदि सन्दर्भ अविकल उद्धृत कर देते हैं।

इकन फला नि भक्ति नि हतिङ्कु रात्य त तुमूत भक्त्य रि कित
कलवनिकिङ् सुभाषित कथा सभाकिन ऋङौन् रसन्य सुभग॥

'जगत्त्रय के महाशक्तिसम्पन्न प्रशास्ता हे परमेश्वर ! आपकी जय हो । मेरे हृदय में आपके श्रीचरणों के प्रति अविचल निष्ठा विद्यमान है । आप सदैव मेरे मन मन्दिर में विद्यमान हैं, कभी विस्मृत नहीं होते । मेरी यह समर्पित भक्तिभावना, उन समस्त प्राणियों की भक्तिभावना बन कर परिणत हो, जो आपकी समर्थना में मेरे साथ है । हे प्रभो ! सार्थक शब्दों से स्वी-सिरजी यह *रघुनाथगाथा* उत्तरोत्तर लोकप्रिय हो तथा इसका मंगलमय सुभग रस जनता-जनार्दन द्वारा हृदयंगम हो ।'

महाकवि योगीश्वर स्पष्टत: *रामायणककविन्* की रचना का उद्देश्य **मोक्ष-प्राप्ति** मानते हैं । अगले पद्य में वह हृदय की सम्पूर्ण निष्ठा से कहते हैं—

साक्षात् मन्मथशील सङ् रघुसुतामिनुहि विषयधर्म रिङ् सरात्
ङ्कान् रामायण भद्रवाद निर मोघ मवङि समिसिप् तिके हति।
सङ् योगीश्वर शिष्ट सङ् सुजन शुब्द मनहिर हुतुस मत्ते सिर
व्यक्तावासुचपन्त रिङ् जुलुड्दोमुक पिनकनिमित्त निङ् लिपस्॥

—रामा० कक० २६. ४९, ५०

'सम्पूर्ण जगत् के प्रति अपना धार्मिक कर्तव्य पूर्ण करने में राघवेन्द्र श्रीराम का स्वभाव साक्षात् मन्मथ के समान है जो कि विषयधर्म (इन्द्रिय भोग) की पूर्ति में अपना कर्तव्य पूर्ण करता है । इसलिए, ईश्वर करे यह रामकथा जो कि 'भद्रवाद' अर्थात् उत्तम वचनों से संवलित है, उस सुरभि के समान हो जो कि धँसकर, सत्पुरुषों के हृदय तक पहुंच जाती हैं । इस कथा का पारायण कर श्रेष्ठ योगीजन (और स्वयं मैं योगीश्वर) वेदज्ञान में पारंगत होंगे तथा सज्जन शुद्ध वित्त का वरण करेंगे । यदि वह कथा हतभाग्यों को भी सुनने को मिलती है तो निस्सन्देह वे भी इसे समझेंगे, चाहे वे पद प्रतिष्ठा में ऊँचे हों, अथवा सामान्य ! और अन्तत: इस कथा के श्रवणमात्र से वे मुक्तिसुख प्राप्त करेंगे ।'

इस प्रकार **महाकवि योगीश्वर** की राम के प्रति पूर्ण भगवद्दृष्टि है । वस्तुतः राम एवं सीता उनके लिये साक्षात् विष्णु एवं लक्ष्मी हैं ।

रामायणककविन् के जिन पात्रों को **योगीश्वर** ने, सविशेष चरित्र-चित्रण द्वारा रेखाङ्कित करने का प्रयास किया है उनमें मुख्य हैं—कुमार भरत एवं लक्ष्मण, राक्षसराज रावण एवं विभीषण तथा विभीषण की पुत्री त्रिजटा । भरत एवं लक्ष्मण विनय तथा आर्जव की मूर्ति हैं, बन्धुत्व एवं अनन्यावलम्बन के जीवन्त प्रतीक हैं । रावण का वही चिर-परिचित रूप है *ककविन्* में जो कि *वाल्मीकि रामायण* में है । हाँ, विभीषण की छवि अवश्य ही पटतर तथा प्रभावी है । वह धीर, वीर, साहसी नयवित्, उपायवित् तथा सत्य पथ पर आरूढ़ एक सच्चे सखा हैं । स्वयं देवी सीता विभीषण के सद्गुणों से परम आश्वस्त हैं । यहाँ अवसर नहीं है कि इन समस्त पात्रों की सप्रमाण समीक्षा की जाय, परन्तु उनके व्यक्तित्व विश्लेषण में **योगीश्वर** ने निश्चय ही मौलिक प्रतिभा का उपयोग किया है ।

फिर भी, महाबली पवनात्मज के विषय में **योगीश्वर** की प्रशस्ति की समीक्षा का लोभ-संवरण नहीं कर पा रहा हूं ।

आञ्जनेय हनूमान् यवद्वीपीय रामकथा के भी मेरुदण्ड प्रतीत होते हैं । *रामायणककविन्* में उनके उदात्त एवं दुर्लभ सद्गुणों का, राम एवं सीता के प्रति उनकी अनन्यनिष्ठा एवं भक्ति भावना का तथा असुरसंहार-सन्दर्भ में उनके विलक्षण तथा अतिमानवीय शौर्य-पराक्रम का भव्य शब्दाङ्कन प्राप्त होता है ।

भारतीय रामकथा की ही भाँति सुवर्णद्वीपीय रामकथा में भी एवं हनूमान् की भेंट ऋष्यमूक पर्वत के तटवर्ती वन में होती हैं । वानरराज सुग्रीव का आदेश पाते ही वही विद्युत्गति से आकाशमण्डल में उड़ते हैं तथा प्रलयझंझा के समान, शरीर के आघात से वायु को निनादित करते हुए तीव्र एवं दुर्वार गति से आगे बढ़ते हैं । मार्ग के वृक्ष समूल उन्मूलित होकर दूर जा गिरते हैं और खण्ड-खण्ड विशीर्ण हो उठते हैं । हनूमान् सिद्धि की पराकाष्ठा पर पहुंचे महात्मा की वेशभूषा धारण करते हैं और राम से पूछते हैं—

हे साधु दिव्य कित धीर विनङ् मराङ्गे
अत्यन्त दुर्गम निकिङ् गिरि ऋष्यमूक।
सङ् ह्यङ् महेश्वर तुविन् मलिमिह् मराङ्के
न्द्यानुङ् प्रयोजन इके पनुसुप्त कालिह ॥७.१३५

ल्विर्निङ् भयातिशय रोद्र अनुङ् हनङ्के
मुङ्ग्वङ् गुहा हन त राक्षस लेन् पिशाच।
लावन् परन् करि हवन्त सुकित्तगम्य
व्वङ्लेन् सके कित तमह्नन वेह् मरङ्के॥ ६.१३६

हनूमान्, ऋष्यमूक पर्वत परिवेष की भयावहता का लोमहर्षक वर्णन कर, राम के वनवासी होने का कारण जानना चाहते हैं और तब राम अपना संक्षिप्त परिचय देते हुए, रावण द्वारा सीता के अपहरण की बात उन्हें बताते हैं। राम अपने भाइयों को दिव्यशक्ति-सम्पन्न तथा एकमात्र स्वयं को मन्दभाग्य बताते हैं—

अक्वेह् अनक् निर अरिङ्कुय दिव्यशक्ति
अंह्रिङ् ङ्हुलुङ्गुग अनक् निर मन्दभाग्य!!

सब कुछ जान लेने के बाद हनूमान् विनम्रतापूर्वक राम को समझाते हैं सुग्रीव को क्लपान्वित करने के लिए। वह वाली तथा सुग्रीव के वैमनस्य तथा वाली के अपार बल-पौरुष की कथा राम को सुनाते हैं तथा अपने अभियान में पूर्ण सफल भी होते हैं—

मित्रान्त योग्य सिर लिङ्कु अनुग्रहान
आपन् महाबल महार्धिक साधुबुद्धि।
तूतूह मासिह मितुह्व असिङ् पकोन्त
मिल्वोमती दशमुख प्रमुका सिरेङ् प्रङ्॥

रामा० कक० ६.१४७

राम द्वारा वाली का वध किये जाने के बाद पवनात्मज सीतान्वेषणार्थ दक्षिण दिशा में प्रस्थान करते हैं। उनके सागर-लंघन का अद्भुत वर्णन **योगीश्वर** करते

हैं। वह आकाशमार्ग से चले विद्युल्लेखा की तरह। गरुड़, सूर्य तथा पवन से भी कहीं अधिक था उनका वेग! वह सूर्य के समान तेजस्वी दीख रहे थे। कपिलवर्ण चमरी गाय के रोमसमूह के समान उनके भी रोम-समूह लम्बे, सुन्दर तेजोमय तथा देदीप्यमान थे।

कदि दिवाकर तेकन यर्कतोन् कुलु निरोज्वल तेजमयान् कतोन्।
तुवि मलित् मदवा कदि चामर कपिलवर्ण अपूर्व्व रि भास्वर॥
अथ मिसत्त सिरङ् पवनात्मज गगन येक हवन् निर्मड्लयङ्।
गरुड सूर्य डडिन् तमतर् पडे लकु निराद्भुत शीघ्र मनोजय॥

—रामा० कक० ८.१; २

हनूमान् ने अपना शरीर विशाल बना लिया तथा उड़ते हुए पर्वत के समान भीषण दीखने लगे। उन्होंने सवेग झम्पापात किया तथा सूर्य-चन्द्रादि ग्रहगणों से भी ऊपर पहुंच गये।

इस वर्णन से हनूमान् के अतिशय शौर्य-पराक्रम एवं दैवी शक्तिमत्ता का परिचय मिलता है। अपनी इस यात्रावधि में हनूमान् नृशंस, भीषण, कुख्यात तथा रौद्र प्रकृति वाली डाकिनी नामक राक्षसी का कौशलपूर्वक वध करते हैं। वह उसके पेट में घुस कर, तीक्ष्ण नखों से उसका उदर विदीर्ण कर देते हैं। **योगीश्वर** पवनात्मज को 'विदग्ध' कहते हैं—**वनपुत्र विदग्ध सिराङ् दुदुक्**।

मेनाक के आतिथ्य को विनम्रतापूर्वक उपेक्षित कर हनूमान् 'विकटाक्षिणी' नामक राक्षसी का वध करते हैं, और सुवेलपर्वत पर आ पहुंचते हैं। रात्रिवेला में उन्होंने लंकापुरी में प्रवेश किया—खरगोश के समान लघु रूप धारण कर।

नानाविध प्रणयकेलियों में डूबे तरुण राक्षस मिथुनों को देख पवनपुत्र विषण्ण हो उठे क्योंकि उन्हें विरह विधुर राघव की स्मृति हो आई। राम के प्रति उनकी करुणा जागृत हो उठी और वह अतिशय शोकार्त हो उठे। विहार-क्रीडा एवं भोजन पान में डूबे राक्षसों को वह क्षण भर भी देख सकने को अनिच्छुक थे। उनका गीत-गायन तक नहीं सुन सकते थे। उनके नेत्रों से निरन्तर अश्रुपात होने लगा—

उमुलत्त सङ् पवनपुत्र रिकङ् मसिवो सराग य सिडिड पड सिह्।
'कलरन् सिराड्डिनकिन् मतुतुद् टि लटा निटङ् रघुसुतार पपसह॥
करुणामनह् निर सशोक तिमिन् मरि यर्वुलत, रिङडिनुम्मसिवो।
मरि मङ्क्रुडौ किदुड्लह् मलर हुमिलीत लुह निर निरन्तर य॥

—रामा० कक० ८.३९.४०

हनूमान् के चरित्र का यह उदात्त पक्ष तो भारतीय रामकथाकारों की भी लेखनी से अनंकित ही रह गया है। अपने उपास्य स्वामी राघव का सीताविरही रूप, दास्यासक्ति के अप्रतिम शलाकापुरुष हनूमान् को भीतर तक बींध देता है। वह लंकावासी तरुण मिथुनों का सुख-चैन, हास-परिहास तथा भोगविलास देख तक नहीं पाते। हनूमान की परदुःख कातरता, सहृदयता एवं सहानुभूतिप्रवणता का परतर प्रमाण भला और क्या हो सकता है ?

योगीश्वर हनुमान् को **नयदित् विदग्ध सिर सङ्मरुत्सुत** कहते हैं क्योंकि वह दुर्विज्ञेय कपटवेष धारण करने में 'दक्ष' हैं। वह बड़ी तत्परता से लंकापुरी के घर-घर में देवी सीता की खोज करते हैं। उन्हें मर्मान्तक पीड़ा होती है जब वह ब्रह्मवेला तक भी जनकात्मजा को नहीं ढूंढ पाते। उन्हें अपना जीवन एकदम निरर्थक प्रतीत होने लगता है वह मन ही मन सोचते हैं कि यदि मैं देवी सीता को पा जाऊँ तो श्रीराम तृप्त हो उठेंगे। जानकी को भी विश्राम प्राप्त हो जायेगा। परन्तु आह ! यदि न पा सका तो मैं कितना गुणहीन, तुच्छ दूत सिद्ध होऊंगा ? दायित्व पूर्ण करने में सर्वथा असमर्थ !

तुष्टा सङ् श्रीराम यर्तिम्व देङ्कु म्वङ् तृप्ति श्री जानकी नावनेहन्।
तन् सिद्धेका देङ्कु तिप्वन् कपंगुह् दूतापेकिन् हीन तन् सिद्धकार्य॥

—रामा० ८.८३

कर्तव्यबोध का यह अद्भुत रूप है। हनूमान् की दूतोचित मानसिकता का यह प्रशस्त चित्राङ्कन है।

अन्ततः पवनपुत्र देवी सीता के समक्ष आ ही जाते हैं, जब वह विभीषण की पुत्री, नवयौवना कुमारी त्रिजटा के साथ देवाराधन के लिये मन्दिर में जाती हैं। सीता सहसा विश्वास नहीं कर पातीं। उन्हें रावण के छल-छद्म की आशंका होती है, जो कुछ ही समय पूर्व उन्हें, अपने अभद्र व्यवहारों से आतंकित कर चुका था। परन्तु जब वह राघव की दुस्सह वियोगव्यथा का वर्णन कर, उनकी मुद्रिका प्रस्तुत करते हैं तो देवी सीता को हनूमान् के प्रति वात्सल्यभाव उमड़ पड़ता है।

दूत का सर्वोत्तम गुण है प्रभावी शब्दों में स्वामी के मूल अभिप्राय को प्रकट करना। हनूमान् इस कला में परम निष्णात हैं। वह जानते हैं कि देवी सीता को सम्प्रति किन सन्देशों की अपेक्षा? फलतः वह उन्हें मुख्यतः दो ही बातें बताते हैं—राम एवं लक्ष्मण का सीता के लिए अतिशय चिन्ताभाव, विकलता और छटपटाहट तथा वानरवाहिनी की असीम युद्धशक्ति तथा सैन्यप्रयाण की व्याकुलता!

नरनाथ रघुसुत ग्लानाकिङ्किङ् मडिन् देवी।
वेलिङुनिङ् सिराकुरु मतङ् न्याकोन् ङ्हुलुन दूता॥

तुवि रान्तिन् देवि मकुङ् सङ् लक्ष्मण शोक सिर।
मग्या त सिराङ् पराङ्के मात्यनङ् रावणान् मूर्क्क॥

बल वानर उमडङ् महौम् मकोलिहङ् शत्रु।
य मतङ् न्यन् देवि तहिर् हय्वग्या राक्षन् हुरिप्त॥

—रामा० कक० ८.१९६-९८

इस नपे-तुले समयोचित सन्देश से सीता उत्फुल्ल हो उठती हैं। वह स्वामी राघव के लिए अपनी चूड़ामणि तथा असीम करुणा से ओत-प्रोत एक लम्बा पत्र पवनात्मज को देती हैं। यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि भारतीय रामकथापरम्परा की कई सहस्राब्दियों में किसी कवि ने 'देवी सीता के पत्र' की परिकल्पना नहीं की है। परन्तु मौलिक प्रतिभा के धनी **महाकवि योगीश्वर** ने आँसुओं की स्याही से लिखे वैदेही के पत्र की सृष्टि कर अपने कवित्व को अमर बना दिया।

योगीश्वर के हनूमान् पौरुष की प्रतिमूर्ति हैं। यद्यपि देवी सीता को राम के सन्देश से आश्वस्त कर वह कृतकृत्य हो चुके हैं। अब उन्हें किष्किन्धा की ओर प्रस्थान कर देना चाहिये। परन्तु शत्रुपक्ष को क्या लगेगा कि कौन आया था? जंगल में मोर नाचा किसने देखा? फलतः उन्हें 'अपना यश स्थापित करने का लोभ' पैदा हो जाता है!

निहन पिनुजि निङ् दूत इकङ् तुमिम्व रि दोन्य।
अमेतयसा यशन्य अनुङ् तङ् अश्रुत चिह्ना॥

हुतुस्त याकु उमङ्गुह् रि सिरङ् जनकपुत्री।
न्द तन्हन् ये वनेहन् अनुङ् अयशा यशङ्क्व॥

—रामा० कक० ८.२११, १२

हनूमान् जानबूझ कर अशोकवन को निःश्रीक बनाने का संकल्प लेते हैं। उनका उद्देश्य है राक्षसों को वानरवाहिनी की असीम युद्धक्षमता की बानगी देना! उन्होंने देखते ही देखते सारा उपवन तहस नहस कर डाला और ललकारा राक्षसों को—

स्यप त राक्षस वान्यमसौ हुनुस्।
पपगकिन्त सि मारुति लिङ् निर्॥

अर्थात् है कई राक्षस, जो आगे बढ़ने की शक्ति रखता है? वह आकर मारुति से जूझे!

रामकथा चाहे भारत की हो चाहे यवद्वीप की! हनूमान् की भूमिका प्रायः सर्वज्ञ शौर्य-पराक्रम की ही अधिक है। सागर-सन्तरण, लंकादाह, सपत्नोन्माथी भयावह युद्ध तथा लक्ष्मणमूर्छा के सन्दर्भ में सञ्जीवनौषधि-सहित समूचे पर्वत का आनयन—ये सारी घटनाएँ आञ्जनेय के अथाह बल-पौरुष की साक्षी हैं।

परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वह मात्र शौर्य-पराक्रम के ही धनी हैं। वस्तुतः हनुमान् करुणा, ममता, वत्सलता, स्वामिभक्ति, इतिकर्तव्यता, शीलसमुदाचार, ज्ञानविज्ञान एवं विवेकादि दुर्लभ गुणों के भी साकार विग्रह हैं।

अशोकवन-विध्वंस क्रम में कुमार अक्ष सहित असंख्य राक्षसों का वध करने के बाद वीर मारुति मेघनाद के नागपाश में स्वयं बँध जाते हैं। यह उनकी शक्तिहीनता नहीं थी। वह चाहते तो नागपाश के टुकडे-टुकड़े कर देते। परन्तु तो महाबली रावण को देखने का उपायमात्र था जो कि वह भुजंगप्रयात के बन्धन में बँधे रहे। **महाकवि योगीश्वर** बड़े कौशल के साथ यह भाव उपन्यस्त करते हैं छन्द का लक्षण प्रस्तुत करते हुए !

न्द तन् संकरिङ् हीन शक्तिन् कपास
अवास्येकनङ् पाशशीर्ण्णा यरहयुन।
उपाया निरार्तोन सङ् रावणेका मतङ्
न्यान् हिनिङ् रिङ् भुजंगप्रयात॥

—रामा० कक० ९.८४

इस उपायकौशल से पवनपुत्र रावण को देखते भी हैं। **योगीश्वर** के हनूमान् की वार्ताकला भी विलक्षण हैं। वह रावण को अत्यन्त मर्मस्पर्शी सदुपदेश देते हैं। रावण को उसकी नृशंसता तथा पापवृत्ति से अवगत कराते हुए भगवान् राम के क्षमाशील साथ ही साथ अवन्ध्यकोप विग्रह का भी वह प्रकाशन करते हैं। यह सन्दर्भ हनूमान् की अगाध नीतिनिपुणता तथा विविध शास्त्रज्ञाननदीष्णता का परिचायक है। हनूमान् भगवान् राम के दिव्यगुणों की चर्चा करते हुए, अहंकारी रावण को 'अमोघ मूर्ख' सिद्ध करते हैं—

लावनिका सङ् राघव साधु नित्य रुमाक्षेङ् रात्सिर दिव्य।
तर्विजगी रिङ् शत्रु तरेलिक्न्दन् कित मूक्र्कामोघ मसंहित॥
स्त्रीकलवन्मास्त्रलविशेष लभनिङ्प्रङ् यज्ञयशत्रु।
यावनिका साध्या ततनिम्ब वेलि कदुहकङ् सङ् रघुपुत्र॥

—रामा० कक० २०.२३, २४

लंकायुद्ध में ऐसे अनेक प्रसंग हैं जिनमें हनूमान् की लोकोत्तर वीरता का चित्रण है। अकम्पन् का वध अकेले पवनात्मज ही करते हैं। मेघनाद के यज्ञ का विध्वंस भी मुख्यत: नही करते हैं। उनकी युद्धकला तथा शत्रुसंहारयुक्ति का क्या

कहना ? परन्तु इन सबकी तुलना में पवनपुत्र हनूमान् राम एवं सीता के अनन्याश्रय भक्त हैं ।

जावा, बाली, सुमात्रा तथा अन्यान्य इण्डोनेशियाई द्वीपों में प्रचलित रामकथा में यह तो है हनूमान् का वाङ्मय स्वरूप ! परन्तु काव्य के समानान्तर प्रचलित वायांग (नाट्य) परम्परा में भी हनूमान् अत्यन्त लोकप्रिय पात्र हैं । डलंग (सूत्रधार) प्राय: उन्हें पनकवन् (विदूषक) की भूमिका में प्रस्तुत करता है । तब हनूमान् अत्यन्त परिहास-पेशल शैली में राक्षसों का संहार करते हैं । उनके वानरव्यक्तित्व की नैसर्गिक चेष्टाएँ ज्यों ही मुखर होती हैं—उनकी कूद-फाँद, उठा-पटक, संक्रमण, लाङ्गूलचालन, दन्तपंक्ति की किटकिटाहट, गुराहट, पञ्जों से प्रहार, नोच-खसोट, धक्का-मुक्की आदि को देख दर्शक आनन्द विभोर हो उठते हैं । इस प्रकार मारुति सुवर्ण द्वीपीय वायांग के प्राणतत्त्व है ।

जैसा कि पहले सविस्तर बताया जा चुका है कि प्रशान्त महासागरीय बृहत्तर-भारत के विभिन्न भूभागों में रामकथा सर्वत्र व्याप्त है । परन्तु उसके दो रूप हैं, एक तो है विकृत रामकथा, जो बौद्ध एवं जैन-परम्परा से विकसित हुई है । दूसरी है प्रकृत रामकथा, जो *वाल्मीकिरामायण* की अनुवर्तिनी है ।

यवद्वीपीय रामकथा के हनूमान् मेधावी, विद्वान्, वीर, विनयी, वाग्मी, कर्तव्य-निष्ठ, अनहंकार तथा दया-दाक्षिण्य युक्त हैं । परन्तु थाईलैण्ड, मलेशिया एवं लाओस की रामकथाओं के हनूमान् उपहासास्पद बनकर रह गये हैं कथाकारों की अप्रशस्त दृष्टि के कारण । लाओस की रामकथा में 'हनीमोन' वानररूपधारी राम एवं वानरी अञ्जना से उत्पन्न बताये गये हैं । ये सारी विकृतियाँ साम्प्रदायिक विद्वेष के कारण भारत में जनमीं और यहीं से अन्यान्य द्वीपों में भी प्रचलित हुई । आज इस बात की आवश्यकता है कि पवनपुत्र हनूमान् के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का मूल्यांकन विश्वजनीन स्तर पर किया जाय ।

सुवर्णद्वीपीय रामकथा-परम्परा के विविध रूप

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि **योगीश्वर**प्रणीत *रामायणकविन्* सुवर्णद्वीपीय परवर्ती वाङ्मय, संस्कृति तथा आचरण संहिता के विकास में 'उर्वरक' कल्प सिद्ध हुआ। वस्तुतः रामकथा का यही वाङ्मय-रूप आगे चलकर स्थापत्य, रंगमञ्च एवं विविध हस्तशिल्पों में भी साकार हुआ। स्थापत्य में तो शायद पहले जैसा नहीं, परन्तु रंगमञ्च एवं हस्तशिल्पों में रामकथा आज भी सम्पूर्ण इण्डोनेशियाई द्वीपों में जीवित हैं। अत्यन्त संक्षेप में इस सन्दर्भ की समीक्षा की जा रही है।

(क) स्थापत्य एवं रामकथा

यवद्वीप में रामकथा का शिल्पाङ्कन मुख्यतः तीन मन्दिरों में हुआ है—चण्डी बोरोबुदुर, चण्डी प्राम्बनान् तथा चण्डी पन्तरण।

कई सौ वर्षों तक **श्रीविजय** के **शैलेन्द्र** शासक तथा जावा के **मतरामवंशी नरेश** (जो स्वयं भी शैलेन्द्रों के ही वंशज थे) साथ-साथ यवद्वीप में शासन करते रहे। इन वंशों में वैवाहिक सम्बन्ध भी होते रहे तथा अवसर पढ़ने पर प्राणान्तक युद्ध भी। इस दृष्टि से जावा का इतिहास बेहद रोचक है। उत्तरी जावा पर श्रीविजयों का अधिकार था जो बौद्धमतानुयायी थे। परन्तु दक्षिणी जावा के मतराम शासक विशुद्ध शैव तथा वैष्णव परम्परा के थे।

दोनों ही वंश तो समानान्तर धर्म चेतना का प्रचार-प्रसार करते रहे। इस प्रचार-प्रचार के केन्द्र था मध्यजावा के योग्यकर्ता नगर से प्रायः सात मील पूर्व में ही स्थित प्राम्बनान नामक धर्मस्थल। प्राम्बनान की स्थिति बहुत कुछ भारतीय

खजुराहो जैसी थी। राजनयिक दृष्टि से यह किसी के अधिकार में नहीं था। परन्तु धार्मिक दृष्टि से यह दोनों ही राजवंशों के अधिकार में था।

कालक्रम की दृष्टि से सर्वप्रथम चण्डी बोरोबुदुर का निर्माण हुआ।[१] जावा की प्रचलित परम्परा के अनुसार विश्वविख्यात यह स्तूप (मन्दिर) ७८० ई० में निर्मित हुआ। इसका प्रमुख शिल्पी था गुणधर्म, जो दक्षिण भारत से आया था। नौ मंजिलों, चौतरफा विशालतोरणों एवं ७२ स्तूपों से मण्डित इसी बौद्ध मन्दिर की भित्तियों पर, पहली बार, दशरथजातक के आधार पर रामकथा का शिल्पांकन किया गया।

सुमात्रा के शैलेन्द्रों का रामकथानुराग तो मात्र भगवान् तथागत के 'रामत्व' के कारण था जब कि मतरामशासक कुलपरंपरा एवं आत्मनिष्ठा से ही भगवान् विष्णु एवं शिव के उपासक थे। **महाराज दक्षोत्तम** (९०३-१८ ई०) ने चण्डी बोरोबुद्र से कुछ मील दक्षिण में ही, प्राम्बनान् गाँव में भव्य त्रिदेव मन्दिर बनवाये। वस्तुतः त्रिदेव-मन्दिरों की यह परिधि अत्यन्त विशाल थी। इस तीर्थ-परिधि की भीतरी अँगनाई में कभी आठ तथा बाहरी परिधि में १५६ लघु मन्दिर थे। परन्तु सन् १००६ ई० में आये भयावह भूकम्प में ये सारे देवालय ध्वस्त हो उठे। सौभाग्यवश विष्णु एवं ब्रह्मा मन्दिर के बीच निर्मित शिवमन्दिर अभी भी अक्षत खड़ा है। शिव तथा ब्रह्मा मन्दिर की दीवारों पर ही कुल ४२ फलकों (Panels) में **योगीश्वर**प्रणीत *रामायण ककविन्* का शिल्पांकन कराया गया है।

जावा की परम्परा के अनुसार ये मन्दिर **रकाई पिक्तन्** द्वारा नवीं शती ई० के उत्तरार्ध में बनवाये गये। इस नरेश का उल्लेख **सम्राट् संजय** के चंगल शिलालेख में है। रकाई पिक्तन् की पत्नी रानी प्रमोदवर्धिनी श्रीविजय **सम्राट्**

---

१. वस्तुतः 'वरभूधर' (श्रेष्ठ पर्वत सुमेरु) के आकार-प्रकार का होने के कारण स्तूप को 'चण्डीवरभूधर' नाम दिया गया। उच्चारण-वैषम्य के कारण कालान्तर में यही 'बोरोबुदुर' बन गया।

समरतुंग की कन्या भी । उसने स्वयं भी प्लओसन् का भव्य बौद्धमन्दिर बनवाया था । पत्नी बौद्ध तथा पति वैष्णव ! कितना अद्‌भुत सामञ्जस्य था !

प्रारंभ से लेकर सेतुबन्ध तक की कथा शिवमन्दिर के फलकों पर अंकित है । सेतुबन्ध से आगे की कथा ब्रह्मामन्दिर की दीवारों पर चित्रित थी जो अब विध्वस्त हो गया है । यवद्वीप के सहृदय स्थपतियों एवं शिल्पकारों ने अपनी अमृतगर्भा टंकिकाओं से रामकथा को मन्दिर भित्तियों पर उत्कीर्ण कर, जड़ पाषाण में भी जैसी उदार चेतना और संवेदना भर दी है वह किसी कविकर्म अथवा गन्धर्वकर्म से कम नहीं है ।

मैं तो अभिभूत हो उठा इन शिल्पों की जीवन्तता को देखकर । सीता की व्यथा पवनात्मज के मुंह से सुन राम करुणा (पत्नीप्रेम वश) एवं रोष (रावण द्वारा अपहरण वश) से भर उठते हैं । रोष में ऊपर उठी उनकी एक भुजा तथा अश्रुबोझिल नतानन आंखें—शिल्पांकन की ये दो विशेषताएं दोनों ही विरोधी भावों को बड़ी निपुणता से उजागर कर देते हैं ।

इसी प्रकार हनूमान् के मुंह प्राणवल्लभ राघव की व्यथाकथा सुनती नतमुखी वैदेही का अंकन दर्शक को अश्रुविगलित ही कर देता है, बशर्ते वह मन की आंखों से इन शिल्पों को देख रहा हो ।

प्राम्बनान के मन्दिर पाषाणनिर्मित ईटों से बने हैं । अतः एक दृश्य का अंकन इस फलक में लगाई गई आठ-दस ईटों पर किया गया है । राम का सम्पूर्ण विग्रह भिन्न-भिन्न शिलाओं पर अंकित है । परन्तु धन्य थे वे शिल्पी कि शरीररचना की समरूपता में तिल भर भी अन्तर नहीं आने पाया है । कभी-कभी तो पात्रविशेष का मुंह ही चार ईटों में बन पाया है आंखें कहीं तो ओंठ कहीं । परन्तु शिलाओं के जुड़ते ही मुख 'चन्द्रमुख' लगने लगता है । शिल्प का ऐसा सूक्ष्मनैपुण्य तो खजुराहो य काञ्ची में भी नहीं मिलता ।

रामायणककविन्(तथा त्रिगुणप्रणीत कृष्णायनककविन्) का दूसरा शिल्पांकन **मजपहितवंशी नरेश हयमनुरुक राजसनगर** द्वारा (१३५०-८९ ई०) पूर्वी जावा में

निर्मित पन्तरण अथवा पलह के शिवमन्दिर में हुआ है। इस मन्दिर की नींव १३४६ ई० में पड़ी थी। दुर्भाग्यवश यह भव्य मन्दिर भी अब विध्वस्त हो चुका है तथापि अवशिष्ट दीवारों पर रामायण का शिल्पांकन देखते ही बनता है। पन्तरण का शिल्पांकन पूर्णत: प्रभावित है प्राम्बनान के शिवमन्दिर से। एक शिल्पफलक में हनूमान् को लंका में प्रदर्शित किया गया है तथा एक अन्य फलक में कुम्भकर्ण की मृत्यु का शिल्पांकन है।

(ख) रंगमञ्च (वायांग) एवं रामकथा

सुवर्णद्वीप में रामकथा की लोकप्रियता को शिखर तक पहुँचाया है वहां के **वायांग** ने। **वायांग** का अर्थ है पुत्तलिका (Marionette) यवद्वीप में हिन्दू-साम्राज्य की संस्थापना के अनन्तर देवालयों में वैदिक देवी-देवताओं की मूर्तियां स्थापित हुई। मंगलमय अवसरों तथा पर्वों पर ये मूर्तियां पूरी साज-सज्जा से जनप्रदर्शनार्थ बाहर निकाली जाती थीं। इससे प्रजा वर्ग का प्रभूत मनोरंजन होता था।

परन्तु यवद्वीप का कट्टरपुरोहित वर्ग पवित्र देवविग्रहों द्वारा जनमनोरंजन करना शास्त्रविरुद्ध कृत्य मानता था। फलस्वरूप, जनरूचि को दृष्टि में रखते हुए, कालान्तर में इन मूर्तियों के स्थान पर इनके प्रतीकात्मक पुत्तलिका-विग्रह प्रदर्शित किये जाने लगे। धीरे-धीरे इन्हीं पुतलियों द्वारा प्राचीन कथानकों का अभिनयात्मक प्रदर्शन भी होने लगा।

१५वीं शती ई० के बाद जावा के कलापोषक सुल्तानों ने इसी **वायांग-परम्परा** को जनमनोरंजन का मुख्य माध्यम बनाया। वायांगों के निर्माण में भी उत्तरोत्तर संशोधन-परिवर्धन हुआ। मुख्यत: ये **वायांग** पांच प्रकार के हैं—

१. **वायांग कुलित**— महिषचर्म से निर्मित संवेदनशील पुतलियाँ।

२. **वायांगगोलेक** (Wooden puppets)—काष्ठनिर्मित पुतलियां गोल आकार की।

३. **वायांग बिबिर**— पुतलियों से निर्मित चित्रपट ।

४. **वायांग तोपेन**— मुखौटों के माध्यम से पुरूषपात्रों द्वारा अभिनय ।

५. **वायांग क्लिनिक**— चिपटे काठ की पुतलियां ।

सम्प्रति जावा, बाली तथा आन्यान्य इण्डोनेशियाई द्वीपों में जिन कथानकों का अभिनय इन पुतलियों द्वारा सम्पन्न होता है वे मुख्यत: तीन प्रकार के हैं कालक्रमानुसार :

१. **वायांगपूर्व** (Ancient)

२. **वायांग मध्य** (Medieva)

३. **वायांग गेडॉग** (Modern)

वायांगपूर्व में मुख्यत: *रामायण, महाभारत* तथा अन्यान्य पौराणिक कथाओं का अभिनय आता है । वायांग मध्य में अर्जुन एवं परिक्षित् से लेकर कडिटी राजवंश (१०५०-१२२२ ई०) तक के कथानक आते हैं तथा वायां गेडॉग में *पाञ्जी* (प्रेमाख्यान) कथाओं की प्रस्तुति होती है ।

सुवर्णद्वीप के इस्लामीकरण के बाद नये-नये वायांगों की सृष्टि हुई । **सुल्तान मंकुनगर**(१८५३-८८ ई०) का इसमें बड़ा सहयोग रहा । आज हम जावा में वायांग अरब, वायांग मेनाक, वायांग रिवॉल्यूसी, वायांग पञ्चशील, वायांग सुराकर्ता तथा वायांग कुलुक सरीखे शीर्षक प्राप्त कर सकते हैं । परन्तु जो प्रतिष्ठा एवं लोकप्रियता **वायांग रामायण** तथा **वायांग महाभारत** को आज भी प्राप्त है जावा और बाली में वह अन्य वायांगों को नहीं । जावा तथा बाली में शायद ही ऐसी कोई रात हो जिसमें कि कहीं न कहीं 'वायांगपूर्व' का कुलित (चर्म) गोलेक (काष्ठ) अथवा बिबिर (चित्र Paintings) पुतलियों के माध्यम से अभिनय न हो रहा हो ।

वायांग-नाट्य का प्राणतत्त्व होता है डलंग अथवा सूत्रधार । वह महान् साधक, **कडलंगान**(वायांगविद्या) में पारंगत तथा विविध ककवीनों का गायक होता है । जावा तथा बाली में 'डलंग' को अतिमानवीय शक्ति तथा देवकृपा से

आप्यायित महामानव माना जाता है । क्योंकि डलंग जब एक बार आसन ग्रहण कर लेता है शाम छः बजे तो प्रातः छः बजे तक (वायांग की समाप्ति तक) एक ही मुद्रा में बैठा रह जाता है । जबकि उसके मञ्चसहायक प्राकृतिक क्रियाओं के लिये बार-बार उठते रहते हैं । ये डलंग कभी-कभी मन्त्र-तन्त्र के परम साधक भी होते हैं ।

जावा तथा वाली में वायांग कितना लोकप्रिय है ? यह वायांगों की दैनन्दिन प्रस्तुति तथा दर्शनार्थ उमड़ी भीड़ को देखकर ही जाना जा सकता है । डलंग तथा उसके सहायक विशाल पर्दे के पीछे बैठते हैं । वहीं **पेलेकोङ्गन** (आर्केस्ट्रा) वादक भी बैठते हैं । पर्दे के पीछे के सामने बैठते हैं दर्शकगण । डलंग मंगलाचरण के अनन्तर **सुलुकगायन** पद्धति (Dhythmic prose) से कथा की अवतारणा करता है और प्रारंभ हो जाता है वायांगनाट्य । भैंसे के चमड़े से बनी विविधपात्रों की पुतलियां डलंग-सहायकों के पास रहती हैं जिन्हें वह दृश्य के अनुसार अभिनय के साथ उपस्थित करता है । डलंग, शृङ्गार, वीर, करुण, भयानक, रौद्र, वीभत्सादि रसों के सन्दर्भ में विविध स्वरभंगी से कथा के गद्य-पद्यात्मक संवादों को बोलता है और उन संवादों के अनुसार ही वायांगों से अभिनय भी कराता है । वाचिक एवं आंगिक अभिनय का यह तादात्म्य इतना गहरा होता है कि लगता है पुतलियां ही संवाद बोल रही हैं । वही हंस रही है, वही गा रही है । डलंग की पृथक सत्ता का भाव चतुर दर्शक को भी नहीं हो पाता ।

डलंग के अतिरिक्त वायांग को आकर्षक एवं जीवन्त बनाते है—पनकवन् । नायक के सहचरभूत ने पनकवन कथा के नीरस क्षणों में अपने विविध अभिनयों से अद्‌भुत हास्य की सृष्टि करते हैं । संस्कृत नाटकों में उपलब्ध विदूषक के समानधर्मा हैं ये पनकवन् पात्र । बालीद्वीप में इन्हें 'परेकान्' कहा जाता है ।

यवद्वीपीय वाङ्मयपरम्परा में, पाञ्जीकथानामक **कडिरी-सम्राट् कामेश्वर प्रथम** के पुत्र **सम्राट् जयभय** (११३५-५७ ई०) का आश्रित कवि **म्यू पनुलुह** इन पनकवन्-पात्रों का प्रथम स्रष्टा है । *घटोत्कचाश्रयककविन्* में नायक अभिमन्यु के सहायक रुप में पनुलुह ने जुरुदेह, पुन्त तथा प्रसान्त नामक तीन पनकवनों की

अवतारणा की। जुरुदेह तथा प्राशान्त परवर्ती साहित्य में एकाकार भी हो गया—जोदेगसान्त के रूप में। परवर्ती ककविनकारों तथा वायांगकारों ने तीन की बजाय चार-पांच एवं छः तक पनकवन रखे।

जैसा कि प्रारंभ में ही संकेतित किया जा चुका है कि ब्राह्मण पुरोहितों एवं धर्माचार्यों के रूढ दृष्टिकोण के कारण देवमूर्तियों (वायांग) द्वारा जनमनोरंजन का घोर विरोध किया गया। फलतः वायांगकला हिन्दू-साम्राज्यावधि में विकसित नहीं हो पाई। वस्तुतः जावा का **वायांग** (रचना एवं प्रयोग दोनों) **पसिसिर-युग** (१८वीं, १९वीं शती ई०) में **सुराकर्ता, कर्तासुरा** तथा **योग्यकर्ता** के सहृदय नाट्यप्रेमी सुल्तानों के संरक्षण में पल्लवित हुआ तथा शिखरारूढ़ भी हुआ। ये **सुल्तान** वायांगलेखकों के महान् आश्रयदाता थे, स्वयं उत्कृष्ट वायांग-लेखक भी थे और **वायांगपूर्व** (रामायण-महाभारत) एवं **वायांग गेदॉग** (पाञ्जिप्रेमाख्यान) के लोकप्रिय अभिनेता भी थे।

मंकुनगरन् लंगेन्द्रिय (अपरसंज्ञा मन्द्रस्वर) सुराकर्ता का राजकुमार प्रभुविजय तथा **कुसुमादिलग** आदि ऐसे ही कलाप्रिय मुस्लिम शासक थे। इनके संरक्षण में **यशादिपुर प्रथम** एवं **द्वितीय, सिन्धुशास्त्र** तथा **तण्डकुसुम** जैसे श्रेष्ठ नाट्यकारों ने अपने नाट्यशास्त्रीय (शास्त्रमिरुड अथवा पाकिम) तथा प्रायोगिक ग्रंथ लिखे।

यह इन्हीं मुस्लिम वायांगप्रेमियों की कृपा थी कि वायांगपूर्व के रूप में रामकथा का अभिनय प्रारंभ हुआ। *रामायणककविन्* तथा सल्तनतकालीन रामायण *सिरतकाण्ड* (एवं रामायण ससक्, रामकिलिंग, हिकायत सेटि राम, राम तेम्बक्, राम किडुंग तथा उत्तरकाण्ड) पर आधारित वायांग के प्रतिपाद्य (Text) भी इन्हीं मुस्लिम साहित्यकारों ने लिखे।

रामकथा की वायांगप्रस्तुति में हनूमान् प्रायः पनकवन् के रूप में आते है। राक्षसों को मार-मार कर उनका कचूमर निकालने में हनूमान् जिन युक्तियों का आश्रय लेते हैं, दर्शक उन्हें देखकर निहाल हो उठते हैं।

परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि जावा तथा बाली में रामकथा का मञ्चन मात्र **वायांग-विधि** से ही होता है। सच तो यह है कि स्वतंत्रता प्राप्ति (१९४५ ई०) के बाद समूचे इण्डोनेशिया में रामकथा का अभिनय मुखौटाधारी स्त्री-पुरुष पात्रों द्वारा ही हो रहा है। चूंकि रामायण-महाभारत आज भी इण्डोनेशिया के गौरवग्रन्थ है अतएव वर्ष में अनेकबार रामायण का अभिनय, खुले रंगमंच पर चांदनी रातों में सम्पन्न होता है—प्राम्बनान मन्दिरप्रांगण में तथा सोलो नगर में। अभिनय की तिथियां महीनो पूर्व से ही प्रचारित होती हैं। अथ: विदेशीपर्यटकों की भारी-भीड़ एकत्र होती है इण्डोनेशिया की रामलीला देखने के लिये।

बालीद्वीप की राजधानी डेनपसार के **क्षीरार्णव** नामक सांस्कृतिक केन्द्र में बने **अर्धचन्द्र** नाम मञ्च पर मैंने यह रामलीला १९८८ई० में देखी। सब कुछ अद्‌भुत था। सारा कमाल तो था डलंग का ही—सारे पात्रों का नाना प्रकार का संवाद स्वयमेव बोलना। हां, संवादानुसारी अभिनय वायांगों (प्रतलियों) के स्थान पर स्त्री-पुरुष पात्र कर रहे थे। हनूमान् के अभिनय ने दर्शकों को व्यामुग्ध रखा था। राक्षसों का संहार करते वह कभी भारी-भरकम राक्षस के कन्धे पर उछलकर बैठ जाते, कभी किसी राक्षस की नाक चबा लेते। कही-कहीं उनके अभिनय में 'नये जमाने' का भी पुट था। उदाहरणार्थ एक मूर्छित राक्षस को हनूमान् पम्प (साइकिल में हवा भरने जैसा) मार कर उठाने लगे। बह जब-जब पम्प मारते राक्षस भी उसी क्रम में उठता जाता। अन्त जैसे ही वह सीधा तनकर खड़ा हुआ कि मारुति ने उसके नितम्ब पर लात लगाया और वह वायुगति से, टेढ़ी-मेढ़ी चाल चलता भाग खड़ा हुआ। पम्प की आवाज डलंग बोल रहा था बड़ी सहजता के साथ।

इस प्रकार रामकथा वायांग तथा मानवपात्राभिनय—दोनों ही माध्यमों से अतिशय लोकप्रिय है सुवर्ण द्वीप में। मुखौटाधारी मानवपात्रों द्वारा की गई नाट्यप्रस्तुति को **वायांगबांग** कहते हैं।

बालीद्वीप का **केचाक्नृत्य** भी सम्प्रति लोकप्रियता के शिखर पर है। **केचाक्** का अर्थ है वानर। इस नृत्य में वानरवेषधारी प्राय: ५०,६० अभिनेता 'केचाक्-केचाक्' (वानरों की बोली) कहते हुए नानाविध अभिनय करते हैं और उन्हीं के बीच

में उभरते हैं रामायण के विविध दृश्य ! सब कुछ नयनाभिराम तथा विस्मयावह होता है । वर्णनमात्र से **केचाक्डांस** की महिमा-गरिमा को समझा पाना असंभव है ।

जावा तथा बाली की रामलीला में **वैषम्य** केवल इतना है कि जावा का डलंग पात्रों का संवाद तथा श्लोकांश—दोनों कविभाषा (old Jawanese) में बोलता है जबकि बालीद्वीप का उलंग मात्र श्लोक ही *रामायणककविन्* (कविभाषा) से बोलता है, परन्तु पात्रों के संवाद वह बाली भाषा (Balinese) में ही बोलता है । दोनों द्वीपों की रामलीलाओं में साम्य यह है कि मञ्चन चाहे वायांगकुलित हो, चाहे वायांग गोलेक । वायांग क्लिनिक हो चाहे वायांग बिबिर । या फिर वायांवांग ही क्यों न हों सबमें (सजीव अथवा निर्जीव) पात्र मूक अभिनय मात्र करते हैं । संवाद सर्वत्र ही केवल डलंग बोलता है ।

(ग) हस्तशिल्प एवं रामकथा

वायांगों (पुतलियां) ने ही जावा तथा बाली द्वीप में अनेक हस्तशिल्पों को जन्म भी दिया है । इन द्वीपों में चमड़े और काठ की पुतलियों के बनाने के अनेक कारखाने कार्यरत हैं । ये पुतलियां इतनी घुमावदार, गतिशील तथा कलामण्डित होती हैं कि उनका अंग-प्रत्यंग किसी भी दिशा में सरलता से मुड़ जाता है । कुछ पुतलियां तो नेत्रसंचालन भी करती हैं । राम, लक्ष्मण, दशरथ, भरत, सीता, त्रिजटा, शूर्पणखा, रावण, कुम्भकर्ण, विभिषण, सुग्रीव, हनूमान्, अंगद तथा अन्यान्य सैंकड़ों रामकथापात्रों के 'वायांग' प्रतिदिन सहस्रों की संख्या में बनते रहते हैं, परन्तु क्या सजाल कि किसी वायांग के रूपसौन्दर्य में तिलभर भी अन्तर आ जाय !

इस प्रकार, इण्डोनेशिया में प्रत्येक रामकथापात्र का व्यक्तित्व 'रूढ' (अपरिवर्तनीय) है । यह वहां के हस्तशिल्प का बहुत बड़ा वैशिष्ट्य है ।

रामायण के विविध दृश्यों का अंकन आबनूस की लकड़ी और कैन्वस पर भी होता है । काष्ठशिल्प का विश्वप्रसिद्ध केन्द्र है बालीद्वीप का **उबुद** नामक

कस्बा । यहां हरेक घर मानो कारखाना ही है । आबनूस की लकड़ी पर रामकथा के विविध दृश्यों का ऐसा अंकन ये कलाकार करते हैं कि उनका हाथ चूम लेने को मन करता है । ड्रांइग रूम की सजता बढ़ाने वाली ये कलाकृतियां बेहद मंहगी है । विदेशी पर्यटकों की मांग के कारण भी इनके दाम आकाश छूने लगे हैं । उबुद के ही एक कारखाने में मैंने आबनूस की प्राय: आठ फुट ऊंची लकड़ी पर 'सीताहरण' का दृश्य देखा । सबसे नीचे विविश, असहाय, क्रन्दन करती सीता, ऊपर उन्हें हाथों में दबोचे रावण तथा उसके भी ऊपर, चोंच फाड़ कर भयावह आक्रमण करता जटायु । तीनों पात्रों की अंगसौष्ठव, भावाभिव्यक्ति तथा काष्ठरचना देखते ही बनती थी । पूछने पर दाम बताया ५०,००० डालर ! तब भी मुझे उस विलक्षण कला का मूल्य कम ही लगा ।

पूर्वी बाली द्वीप के ऐतिहासिक गेल्गेल नगर में कैन्वस पर पेण्टिंग का काम होता है । यहां हथकरघे पर सारोंग (लुंगी) तथा अन्यान्य अलंकृत वस्त्र बनते हैं । कैन्वस पेण्टिंग में भी *रामायण* तथा *महाभारत* के ही दृश्यांकन सर्वोपरि हैं । सारोंग तथा अन्यवस्त्रों में भी बुनावट के माध्यम से रामायण के दृश्यों को चित्रित किया जाता है । वस्तुत: काष्ठशिल्प, कैन्वसपेण्टिंग तथा वस्त्रशिल्प का बालीद्वीप ऊंचे पैमाने पर निर्यात् भी करता है ।

समूचे इण्डोनेशिया में (विशेष कर जावा में) **बाटिक** व्यवसाय पराकाष्ठा पर है । *रामायण* तथा *महाभारत* के दृश्यों से अंकित **बनयान** से बाजार भरा हुआ है । अन्यान्य वस्त्रों (जैसे चादर, तकिया आदि) पर भी रामायण-दृश्यों का अंकन होता ही रहता है । रामकथा इण्डोनेशिया में नित्यजीवित है इन्हीं उद्योगों के माध्यम से । मुस्लिम होते हुए भी इण्डोनेशियाई जन 'रामायण' को अपना धर्मग्रंथ मानते है और रामलीला का मञ्चन भी 'राष्ट्रीयपर्व' के ही रूप में शासकीय-स्तर पर आयोजित करते हैं । वे आज भी *रामायण-महाभारत* के ही पात्रों को अपना पूर्वपुरुष (पुरखा) बताते हैं । राजमार्गों का नामकरण भी *रामायण-महाभारत* पात्रों के नाम पर करते हैं । इस प्रकार, बदली हुई परिस्थितियों में इस राष्ट्र ने अपनी **सुवर्णद्वीपीय पहचान** को अक्षुण्ण बनाये रखा है ।

सुवर्णद्वीपीय रामायण-संस्कृति : एक मूल्यांकन

विषयोपसंहार :

सुवर्णद्वीप आज भी **राममय** है । प्राय: चौदह करोड़ की आबादी वाले तथा १३६७७ छोटे-बड़े द्वीपों के रूप में बिखरे इस विशाल राष्ट्र प्राय: दो करोड़ हिन्दू अभी भी अवशिष्ट है । इनमें भी, इण्डोनेशिया के सत्ताईस प्रान्तों में से एक **बालीद्वीप** तो ईशा की प्रारंभिक शती से अब तक वैदिकमतावलम्बी ही है । यहां प्राय: तीस लाख शैव हिन्दुओं का निवास है । मुस्लिम एवं क्रिश्चियन नानमात्र के हैं ।

शासन के स्तर पर इस राष्ट्र में तीन धर्मों को मान्यता प्राप्त है—इस्लाम, हिन्दूधर्म तथा ख्रिस्तधर्म । परन्तु एक अद्‌भूत समन्वयात्मक संस्कृति इस राष्ट्र में आज भी प्रतिष्ठित है । इस्लामीकरण के बावजूद भी इण्डोनेशिया ने अपनी हिन्दू (वैदिक) आचरणसंहिता को भुलाया नहीं । इस देश के लोग बड़े गर्व से कहते हैं: We have changed our caps only and not the hearts (हमने केवल अपनी टोपियां बदली हैं, हृदय नहीं) ।

सचमुच, इण्डोनेशिया के मुस्लिम हृदय से अभी भी हिन्दू हैं । उन्होंने अपने नाम तक नहीं बदले । **सुकार्नो** (सुकर्ण) **सुहार्तो** (सुहृत्) **सुडर्मोनो** (सुधर्मन्) **सपर्वतो** (सुपर्वत) आदि सारे नाम संस्कृत के ही हैं । परन्तु ये सभी नाम मुस्लिमों के हैं । अभी भी लाखों आस्थावान् मुस्लिम वहां ऐसे मिलेंगे जो भटार विष्णु भटार शिव अथवा दुर्गा महिषासुरमर्दिनी के परम उपासक हैं । मैंने अपने बालीप्रवास में, दूरदर्शन कार्यक्रमों में मुस्लिमों की विवाहपद्धति देखी । दोनों पक्षों से शाखोच्चार पढ़े जाने जैसा दृश्य दीखा ।

रामायण-संस्कृति का वर्चस्व सुवर्णद्वीप पर अभी भी प्रभावी है । हिन्दूमन्दिरों के रखरखाव के लिये शासन का एक स्वतंत्र विभाग ही कार्यरत है मन्त्रिविशेष के संरक्षण में । शासन के स्तर पर प्रतिवर्ष नियत तिथियों पर नियमित रूप से रामलीला का मञ्चन प्राम्बनान, सोलो तथा अन्याय नगरों में होता रहता है । बाली द्वीप में इन सांस्कृतिक गतिविधियों का सञ्चालन **अस्ति** (ASTI=Academy of Sani Tari of Indonesia) नामक संस्था[१] द्वारा शासन-स्तर पर हो रहा है जिसके निदेशक **ई० मदे बान्दम** स्वयं नृत्य-संगीत विशेषज्ञ हैं । **राष्ट्रपति सुहार्तो** बाली के समस्त हिन्दू धर्मकृत्यों में पूरी निष्ठा के साथ सम्मिलित रहते हैं ।

सुप्रसिद्ध राजनीति-विशारद **श्री पेराला रत्नम्,** जो कि अमरीका, चीन, लाओस तथा इण्डोनेशिया में भारत के यशस्वी राजदूत रहे, बृहत्तर भारत में रामायण-संस्कृति की प्रतिष्ठा से अत्यन्त प्रभावित थे । उन्होंने प्रधानमन्त्री **पं० जवाहरलाल नेहरु** के समक्ष *ब्रिटिशकॉमनवेल्थ* की ही तरह *रामायणकॉमनवेल्थ* (Ramayana Commonwealth) की स्थापना का प्रस्ताव रखा था । उनका विचार था कि उन राष्ट्रों का अपना एक समवाय होना ही चाहिए जो रामायण-संस्कृति से जुड़े हैं । यदि ऐसा हो जाय तो इन राष्ट्रों की आपसी समस्याएं स्वयं सुलझाई जा सकेंगी, रामायण के ही आदर्शों का अनुकरण करके ! परन्तु भारतीय धर्म एवं संस्कृति को 'इज के फाहे' की तरह कान में रखने वाले **पं० नेहरु** को यह प्रस्ताव उपहासास्पद ही लगा । यह सन्दर्भ मुझे **सम्मान्य रत्नम्** की विदुषी पत्नी महीयसी **कमलारत्नम्** जी ने बताया था ।

पूर्वप्रधानमन्त्री **श्रीमती इन्दिरागान्धी** के प्रयत्नों से भारत और इण्डोनेशिया एक दूसरे के प्रति अत्यधिक आश्वस्त हुए । दोनों राष्ट्रों के बीच अनेक शैक्षिक एवं सांस्कृतिक समझौते हुए । भारतीयविद्वान् इण्डोनेशिया के विश्वविद्यालयों में संस्कृत एवं प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्यापनार्थ विजिटिंग प्रोफेसर नियुक्त हुए । यह क्रम अभी भी चल रहा है । परन्तु आवश्यकता है बड़े पैमाने पर इस

---

१. नृत्यकला अकादमी, इण्डोनेशिया ।

सम्बन्ध को दृढ़ करने की। मात्र बाली द्वीप में ही प्रायः ९ हजार पाण्डुलिपियां सुरक्षित हैं कविभाषा में। भारत में जो विद्या लुप्त हो गई वह बाली में सुरक्षित है। सिंगराजा नगर के पाण्डुलिपि-संग्रहालय (गेडुंगकृत्य) में ग्रंथों के नाममात्र से मैं विस्मित हो उठा।

रामायणककविन् में भी मदनोदय, सन्धिसूत्र, शचीशास्त्र इन्द्राणी की चर्चा आई है। **भगवान्गर्भ** (शकुनशास्त्र) *मुहूर्तलक्षण, चन्द्रप्रमाण, क्रीडाक्षर, काव्यजानकी, वसुन्धरी तुतुर, पञ्चकाण्ड, विर्दस्पतिकल्प, पमेदस्मर* (गुह्यरोग) *धर्मशिष्य, जगत्कारण* आदि लोन्तारों (ताडपत्रांकित पाण्डुलिपियों) में कौन विद्या सुरक्षित है—इसका सांगोपांग अध्ययन भारतीय विद्वानों द्वारा किया जाना चाहिये क्योंकि वह सब कुछ प्रकारान्तर से भारतीयविद्या की ही सम्पत्ति है।

सुवर्णद्वीपीय साहित्यपरम्परा के शिखरग्रंथ **महाकवि योगीश्वर**प्रणीत *रामायणककविन्* का मैंने प्रथमबार देवनागरी लिप्यन्यतर एवं प्रामाणिक हिन्दी रूपान्तर सम्पन्न कर अपने विद्याश्रम को कृतार्थ किया। परन्तु महाकवि कालिदासप्रणीत *रघुवंशमहाकाव्य* पर आधारित *सुमनसान्तककविन्* का भी एक ऐसा ही संस्करण तैयार करने की बलवती स्पृहा मन में है। यह महाकाव्य **किडटीनरेश जयवर्ष दिग्जय** (१२वीं शती ई० पूर्वार्ध) के राजकवि **म्पू मोणगुण** द्वारा लिखा गया है।

आधार ग्रन्थ

१. **रामायणककविन्** (देवनागरी लिप्यन्तरण एवं हिन्दी अनुवाद)—प्रो० राजेन्द्र मिश्र। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी। १९९५ ई०।

२. **लिटरेचर ऑव जावा (दो भाग)** —थ्योडोर पिगॉड, १९६७ ई०।

३. **सुवर्णद्वीप (दो भाग)** —डॉ० आर० सी० मजूमदार, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली।

४. **सुदूर-पूर्व में भारतीय संस्कृति उसका विकास**—श्री बी० एन्० पुरी, हिन्दी समिति, लखनऊ।

५. **दक्षिण-पूर्व एशिया में भारतीय संस्कृति**—डॉ० आर० एन्० पाण्डेय, इलाहाबाद १९८७ ई०।

६. **बालीद्वीपे भारतीय संस्कृति**—अभिराज डॉ० राजेन्द्र मिश्र, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली। १९९६ ई०।

७. **शास्त्रालोचनम्** (भारतमूलकं प्राचीनजावीसाहित्यम्)—अभिराज डॉ० राजेन्द्र मिश्र, अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद १९९४।

८. **दि आइलैण्ड ऑव बाली**—माइकेल काबरूबियास (संकलित नोट्स)

९. **रामायणककविन्**—डा० सुवितो सन्तोषो, इण्टरनेशनल अकादमी ऑफ इण्डियन कल्चर, नई दिल्ली, १९८० ई०।

१०. **दि संस्कृत सोर्सेज़ ऑव दि स्टोरी ऑव राम इन इण्डोनेशिया** (पीएच्० डी० थीसिस), श्री सोमवीर, दिल्ली विश्वविद्यालय, १९९५ ई०।

संस्कृत, हिन्दी एवं भोजपुरी के रससिद्ध कवि, सुधी समीक्षक एवं प्राच्यविद्या की अनेक शाखाओं के गहन अध्येता अभिराज डॉ० राजेन्द्र मिश्र राष्ट्र के लोकप्रिय रचनाधर्मियों में अन्यतम हैं। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में पच्चीस वर्ष तक यशस्वी अध्यापन करने के बाद डॉ० मिश्र जनवरी १९९१ ई० से हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला के संस्कृतविभाग में आचार्य एवं अध्यक्ष पद पर आसीन हैं।

अर्वाचीन संस्कृत रचनाधर्मिता के सर्वाधिक समर्थ प्रतिनिधि प्रो० राजेन्द्र मिश्र की अब तक पचीस मौलिक संस्कृत कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं जो महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाट्य तथा कथा-विद्या से सम्बद्ध हैं। जानकीजीवनम् तथा वामनावतरणम् डॉ० मिश्र द्वारा प्रणीत विशाल महाकाव्य हैं। इसके अतिरिक्त २७ शतक, ६५ एकांकी, २५० नवगीत तथा २० कहानियों का प्रकाशन कर उन्होंने देववाणी का अक्षय भण्डार समृद्ध किया है तथा उसे जीवन्तता प्रदान की है। राष्ट्रभाषा हिन्दी में भी उनका योगदान कम नहीं है।

साहित्यअकादमी (१९८८) वाचस्पतिसम्मान (१९९३) कालिदास सम्मान (१९९४) कल्पवल्ली सम्मान (१९९६) से अलंकृत तथा दर्जनों अन्य प्रान्तीय साहित्यपुरस्कारों से सम्मानित डॉ० राजेन्द्र मिश्र अहर्निश शोध एवं मौलिक-सर्जना में दत्तचित्त हैं।

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
56-57, इन्स्टिट्यूशनल एरिया, पंखा रोड,
जनकपुरी, नई दिल्ली-110058